कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

वर्ष 60 | अंक: 08 | जून 2014 | मूल्य : ₹ 10

मुक्त विद्यालय-छुए मन, बदले जीवन

विद्याधनम् सर्वधनं प्रधानम्

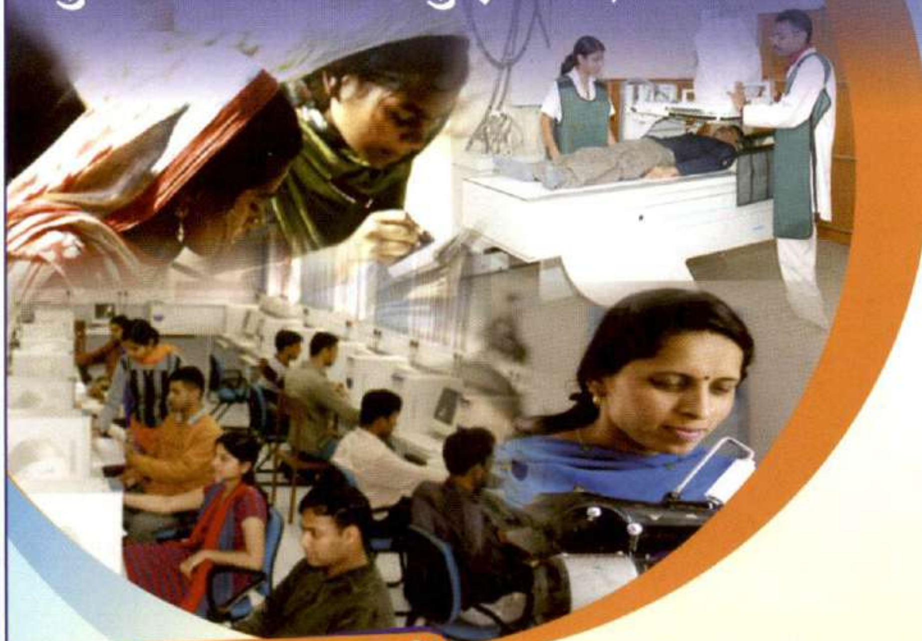

आओ पढ़ें! आगे बढ़ें!

अपनी शिक्षा आगे बढ़ायें...
मुक्त विद्यालय को अपनायें

पाठ्यक्रम	प्रवेश शुल्क (बिना विलम्ब)			प्रवेश के लिए तिथियां
	पुरुष	महिलाएं	छूट प्राप्त वर्ग	
• मुक्त बेसिक शिक्षा कक्षा–III, V एवं VIII	–	–	–	30 जून (प्रत्येक वर्ष)
• सेकेन्डरी (कक्षा - X) (i) पाँच विषयों के लिए (ii) प्रत्येक अतिरिक्त विषय के लिए	 ₹ 1350 ₹ 200	 ₹ 1100 ₹ 200	 ₹ 900 ₹ 200	ब्लाक-1 : 16 मार्च–31 जुलाई (बिना विलम्ब शुल्क) 1 अगस्त–15 सितम्बर (विलम्ब शुल्क के साथ) ब्लाक-2 : 16 सितम्बर–31 जनवरी (बिना विलम्ब शुल्क) 1 फरवरी–15 मार्च (विलम्ब शुल्क के साथ)
• सीनियर सेकेन्डरी (कक्षा - XII) (i) पाँच विषयों के लिए (ii) प्रत्येक अतिरिक्त विषय के लिए	 ₹ 1500 ₹ 230	 ₹ 1250 ₹ 230	 ₹ 975 ₹ 230	ब्लाक-1 : 16 मार्च–31 जुलाई (बिना विलम्ब शुल्क) 1 अगस्त–15 सितम्बर (विलम्ब शुल्क के साथ) ब्लाक-2 : 16 सितम्बर–31 जनवरी (बिना विलम्ब शुल्क) 1 फरवरी–15 मार्च (विलम्ब शुल्क के साथ)
• व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम (6 माह से 2 वर्ष)	पाठ्यक्रमों एवं अवधि के आधार पर			सत्र - 1 : 30 जून (प्रत्येक वर्ष) सत्र - 2 : 31 दिसम्बर (प्रत्येक वर्ष)

प्रवेश के लिए अपने निकटतम अध्ययन केंद्र अथवा संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय से संपर्क करें।
विलम्ब शुल्क, अध्ययन केंद्रों, क्षेत्रीय कार्यालयों आदि की विस्तृत जानकारी के लिए वेबसाइट www.nios.ac.in देखें।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त संस्थान)
ए–24/25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर (उ.प्र.)

टॉल फ्री नं. **1800-180-9393**; ईमेल : **lsc@nios.ac.in** वेबसाइट : **www.nios.ac.in**

विश्व की सबसे बड़ी मुक्त विद्यालयी शिक्षा प्रणाली

KH-57/2014

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 60 ★ मासिक अंक : 08 ★ पृष्ठ : 48 ★ ज्येष्ठ–आषाढ़ 1936 ★ जून 2014

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा
वरिष्ठ संपादक
कैलाश चन्द मीना
संपादक
ललिता खुराना

संपादकीय पत्र–व्यवहार
वरिष्ठ संपादक,
कमरा नं. 655, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110 011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक
विनोद कुमार मीना
व्यापार प्रबंधक
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 011–26100207, फैक्स : 26100207
ई–मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण
आशा सक्सेना
सज्जा
संजीव कुमार साणू

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
सार्क देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

कृषि विकास एवं नई तकनीक — डॉ. वीरेन्द्र कुमार — 3

जैविक कृषि तकनीक की संभावनाएं — तुलसीराम दहायत एवं डॉ. केशव टेकाम — 8

कृषि तकनीक से सुधरता ग्रामीण जीवन स्तर — विकास कुमार सिन्हा — 12

कृषि विकास में सूचना प्रौद्योगिकी एवं ट्रांसजैनिक फसलों की भूमिका — सोनी कुमारी — 17

कृषि की अभिनव तकनीक — डॉ. कल्पना द्विवेदी — 23

आधुनिक फार्म मशीनरी से खेती — मधुरानी — 26

अभिनव कृषि तकनीक विकास का महाअभियान — डॉ. बृजेश कुमार — 31

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव — जितेन्द्र द्विवेदी — 35

घरेलू औषधि भी है लौकी — डॉ. सुनील कुमार खण्डेलवाल एवं डॉ. देवेन्द्र जैन — 41

खेती में विविधिकरण से मिली सफलता — डॉ. अजय कुमार सिंह — 45

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

आज कृषि पर सबसे अधिक दबाव बढ़ती जनसंख्या का है। देश के 329 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में से केवल 143 मिलियन हेक्टेयर पर खेती की जाती है जहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को बिना नुकसान पहुंचाए उत्पाद एवं उत्पादकता बढ़ानी होगी। ऐसे में कृषि को विकसित करने के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने की सख्त जरुरत है।

गत 66 वर्षों में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी जैसे संकर बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक एवं नवीनतम कृषि यंत्रों की सहायता से खाद्यान्न उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु ने भी कृषि क्षेत्र की प्रगति पर विशेष जोर देने को कहा जिससे भारत में उच्च कोटि का कृषि अनुसंधान, कृषि प्रसार एवं कृषि शिक्षा का ढांचा स्थापित किया जा सके। एक तरफ कृषि क्षेत्र के चहुंमुखी विकास के लिए योजनाएं बनाई गई तो दूसरी तरफ कृषि अनुसंधान एवं कृषि प्रसार को भी नई दिशा दी गई।

कृषि उत्पादन को ध्यान में रखकर सरकार की ओर से किसानों के लिए कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। राष्ट्रीय बागवानी मिशन के जरिए किसानों को परंपरागत खेती के साथ ही बागवानी के प्रति भी आकर्षित किया जा रहा है। इससे जहां उनके जीवन–स्तर में सुधार हो रहा है वहीं खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ रहा है। आधुनिक खेती में बढ़ती लागत एवं जहरीले कीटनाशकों के चलते किसानों को जैविक खेती की ओर भी प्रेरित किया जा रहा है। जैविक खेती का मुख्य उद्देश्य कम से कम लागत मूल्य में अधिक उत्पादन लेना तथा जमीन का उपजाऊपन कायम रखकर जहर मुक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना है। आर्गेनिक फूड के फायदों को देखते हुए आजकल इसका प्रचलन दिनोंदिन बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप फलों एवं सब्जियों की जैविक खेती का भविष्य भी उज्जवल दिख रहा है।

कृषि उत्पादन में बीजों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शुद्ध एवं स्वस्थ प्रमाणिक बीजों का उपयोग करने से जहां एक ओर अच्छी पैदावार मिलती है वहीं दूसरी ओर समय एवं पैसों की बचत होती है। इसी वजह से सरकार की ओर से बीजों की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देने पर जोर दिया जा रहा है। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन बढ़ने के साथ–साथ गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। खेती को बढ़ावा देने एवं पैदावार बढ़ाने के लिए भूमि संरक्षण की दिशा में सरकार की ओर से कई महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। केंद्र सरकार की ओर से किसानों को उपज का उचित मूल्य दिलाने की दिशा में भी सराहनीय प्रयास किए जा रहे हैं। सरकार के न्यूनतम समर्थन मूल्य से सीमांत एवं छोटे किसानों को काफी फायदा हुआ है।

आज हम खाद्यान्न के मामले में न केवल आत्मनिर्भर बन चुके हैं बल्कि कृषि मंत्रालय के एक आकलन के अनुसार 2013–14 में चावल, गेहूं, मक्का, तूर व कपास का उत्पादन रिकार्ड स्तर पर होने का अनुमान लगाया गया है। इस वर्ष दालों तथा तिलहनों का उत्पादन भी अब तक के सर्वोच्च स्तर पर अनुमानित है। और उत्पादन में यह वृद्धि कृषि क्षेत्र में उच्च तकनीक के इस्तेमाल से ही संभव हो पाई है।

वातावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सब्जी उत्पादन बढ़ाने में हरित गृह तकनीकी भी अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हो रही है। ऐसे क्षेत्र जहां पर शीतकाल अधिक लंबा होता है वहां पर खुले वातावरण में सब्जी उत्पादन संभव नहीं हो पाता है। हरित गृह तकनीकी जलवायु संबंधी विषम परिस्थितियों को कृत्रिम रूप से नियंत्रित करने की एक वैज्ञानिक विधि है। परंपरागत कृषि विधियों की अपेक्षा 'हरित गृह' में दो से ढाई गुना तक अधिक पैदावार ली जा सकती है। इस प्रकार वर्षभर सब्जी उत्पादन किया जा सकता है। साथ ही उपज की मात्रा, गुणवत्ता और उत्पादकता में भी काफी बढ़ोतरी की जा सकती है।

ट्रांसजैनिक (जीएम) तकनीक के माध्यम से दुष्कर एवं अनुपजाऊ प्रकृति के जलवायु प्रदेशों में भी फसलों का उत्पादन हो सकेगा। जी.एम फसलें जैव रोगों एवं कीटों आदि के प्रति जबर्दस्त प्रतिरोध क्षमता रखती हैं। ट्रांसजैनिक कृषि से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि होगी। वर्तमान में जहां किसानों के घर–घर तक टेलीफोन, मोबाइल और कम्प्यूटर पहुंचे हैं, वहीं संचार क्रांति से कृषि विज्ञान के क्षेत्र में पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है। सूचना क्रांति ने इतनी तेजी से भारत के हर गांव तक अपने पैर पसार लिए हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों को भी इसका अनुमान नहीं था। आज सूदूर गांव में बैठा किसान इंटरनेट के माध्यम से पलक झपकते ही कृषि संबंधी सारी जानकारियां हासिल कर रहा है। कृषि विज्ञान संबंधी नवीनतम व अत्याधुनिक जानकारियों के प्रचार–प्रसार में इंटरनेट महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके माध्यम से न केवल किसानों की मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं बल्कि वे आर्थिक रूप से पहले से सम्पन्न हुए हैं।

आज का किसान ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन व बिगड़ते मृदा स्वास्थ्य जैसी गंभीर समस्याओं के बारे में पूरी तरह से जागरूक है। आज किसानों के पास सूचनाएं और नई–नई जानकारियां प्राप्त करने के कई माध्यम हैं। परंतु कृषि से जुड़ी किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए इंटरनेट सबसे प्रभावी, सरल व आसान माध्यम है। आज किसान देश के किसी भी कोने से ई–मेल कर अपनी कृषि संबंधी किसी भी समस्या का हल पा सकता है। यह सुविधा हिंदी सहित सभी भाषाओं में उपलब्ध है। आज देश भर के किसान बड़े पैमाने पर इसका इस्तेमाल कर लाभान्वित हो रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग मौसम संबंधी जानकारी, फसल उत्पादन बढ़ाने संबंधी, मृदा उर्वरकता व उत्पादकता संबंधी तथा भूमि संबंधी रिकार्डों के कम्प्यूटरीकरण में भी किया जा रहा है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में ई–चौपाल केंद्रों की भी स्थापना हो रही है। देश के अनेक भागों में हजारों से अधिक ई–चौपाल केंद्र आवश्यक जानकारी देकर कृषि और किसानों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि इंटरनेट के प्रसार से किसानों की महत्वपूर्ण सूचनाओं तक पहुंच आसान हुई है। इंटरनेट किसानों, वैज्ञानिकों और सरकार के मध्य संपर्क सेतु का कार्य करता है। इसके माध्यम से सरकारी योजनाओं और कृषि अनुसंधान संबंधी महत्वपूर्ण सूचनाएं सीधे तौर पर किसानों तक पहुंचती हैं। इंटरनेट सुविधाओं के चलते ही आज भारत का कुल खाद्यान्न उत्पादन 259 मिलियन टन को पार कर गया है।

कृषि विकास एवं नई तकनीक

डॉ. वीरेन्द्र कुमार

सरकार ने कृषि उत्पादों खासकर गेहूं, चावल, दाल और खाद्य तेलों का उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया है। जरूरी चीजों की कीमतों को काबू में रखने के लिए उनका उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। कृषि को विकसित करने के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने की भी सख्त जरूरत है। कृषि शोध पर जोर देने की बात भी होनी चाहिए। कृषि क्षेत्र की तरक्की के लिए व्यापक स्तर पर अनेक कार्यक्रम बनाए गए जिनमें से प्रमुख कृषि तकनीकों का संक्षिप्त विवरण इस लेख में दिया गया है।

खाद्यान्न उत्पादन की दुर्दशा को देखते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि के विकास को प्रमुखता दी गई जिससे भारत में उच्च कोटि का कृषि अनुसंधान, कृषि प्रसार व कृषि शिक्षा का ढांचा स्थापित किया जा सका। बिना किसी देरी के कृषि क्षेत्र के चहुंमुखी विकास के लिए योजनाएं बनाई गई। सन् 1958 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली को 'मानद विश्वविद्यालय' का दर्जा दिया गया जहां पर अमेरिका की लैंड ग्रान्ट प्रणाली के तहत कृषि शिक्षा का प्रावधान किया गया। इसी के साथ कृषि अनुसंधान व कृषि प्रसार को भी नई दिशा दी गई। अभी हाल में प्रधानमंत्री ने कृषि उत्पादों खासकर गेहूं, चावल, दाल और खाद्य तेलों का उत्पादन बढ़ाने पर जोर देते हुए कहा है कि जरूरी चीजों की कीमतों को काबू में रखने के लिए इनका उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। कृषि को विकसित करने के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने की सख्त जरूरत है। कृषि शोध पर जोर देने की बात भी होनी चाहिए। कृषि क्षेत्र की तरक्की के लिए व्यापक स्तर पर अनेक कार्यक्रम बनाए गए जिनमें से प्रमुख कृषि तकनीकों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

संकर धान का विकास

देश की बढ़ती आबादी की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए प्रति इकाई क्षेत्र कृषि भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इस संबंध में, धान की उत्पादकता बढ़ाने में संकर धान तकनीक की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। धान भारत की प्रमुख और अग्रणी खाद्यान्न फसल है। सुगन्धित संकर धान किसानों की आय के लिए एक मुख्य फसल बन चुकी है। सुगंधित संकर धान अपने उत्कृष्ट पौष्टिक गुणों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में

बहुत लोकप्रिय है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सुगंधित धान का मुख्य उत्पादक और निर्यातक है। साथ ही सुगंधित धान विदेशी मुद्रा अर्जित करने का भी मुख्य कृषि उत्पाद है। वर्तमान में चीन 15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में संकर धान का उत्पादन कर विश्व का अग्रणी देश बना हुआ है। चीनी वैज्ञानिक डॉ. यूनान लोंगपिंग को संकर धान के 'जनक' के रूप में जाना जाता है जिनके लगभग दो दशकों से अधिक समय के अथक अनुसंधान प्रयासों से प्रथम संकर धान की किस्म उत्पन्न हुई। चीन में संकर धान की तकनीक अपनाने से लगभग 1.5 टन प्रति हेक्टेयर अतिरिक्त चावल उत्पन्न होता है जिसके परिणामस्वरूप इस तकनीक द्वारा लगभग 25 मिलियन टन अतिरिक्त चावल का उत्पादन होता है। इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान ,मनीला में संकर धान पर हुए अनुसंधान कार्यों का लाभ और चीन के अनुभवों से सीख लेते हुए भारत में भी संकर धान पर अनुसंधान और विकास में तेजी आई। परन्तु किसानों में इसकी कम जानकारी के कारण इसका उत्पादन क्षेत्र सीमित है। भारत में संकर धान के अन्तर्गत लगभग 0.28 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल है जो कुल धान उत्पादन क्षेत्र का मात्र 0.67 प्रतिशत है। भारत में संकर धान तकनीक का भविष्य उज्जवल है जो कम क्षेत्र से अधिक उत्पादकता और कुल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होगी। आज भारत में संकर धान की दर्जनों से ज्यादा किस्में किसानों के लिए उपलब्ध हैं। संकर धान की ये किस्में पौष्टिक, आकर्षित दानों वाली, लागत साधनों के प्रतिसंवेदी और जल्दी पकने वाली हैं। उत्पादकों के लिए संकर धान का उत्पादन लाभकारी है और इसकी उपज परम्परागत किस्मों की अपेक्षा 15–25 प्रतिशत अधिक होती है। अतः इसे किसानों में और अधिक लोकप्रिय बनाने की जरूरत है।

हरित गृह तकनीकी

वातावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सब्जी उत्पादन बढ़ाने में हरित गृह तकनीकी अत्यन्त महत्वपूर्ण साबित हो रही है। ऐसे क्षेत्र जहां पर शीतकाल अधिक लम्बा होता है वहां पर खुले वातावरण में सब्जी उत्पादन संभव नहीं हो पाता है। हरित गृह तकनीकी जलवायु संबंधी विषम परिस्थितियों को कृत्रिम रूप से नियंत्रित करने की एक वैज्ञानिक विधि है। परम्परागत कृषि विधियों की अपेक्षा 'हरित गृह' में दो से ढाई गुना तक अधिक पैदावार ली जा सकती है। इस प्रकार वर्षभर सब्जी उत्पादन किया जा सकता है। साथ ही उपज की मात्रा, गुणवत्ता एवं उत्पादकता में भी काफी बढ़ोतरी की जा सकती है। यह तकनीकी सब्जियों की अगेती पौध तैयार करने, बेमौसमी सब्जी उत्पादन, फसल सघनता को बढ़ावा देने, संकर व उन्नत किस्मों के रखरखाव में भी प्रयोग में लायी जा रही है। इनके अन्तर्गत ब्रोकोली, पत्तागोभी, विलायती कद्दू, शिमला मिर्च, करेला, टमाटर व खीरा का वर्ष भर उत्पादन किया जा सकता है। यह तकनीकी उच्च उत्पादकता के आधार पर कम क्षेत्र से अधिक उत्पादन उपलब्ध कराने में सक्षम है। किसानों के पास खेती योग्य भूमि दिनोंदिन कम होती जा रही है। साथ ही देश की भौगोलिक परिस्थितियां जैसे समतल भूमि का अभाव, वर्षा–आधारित खेती, ओलावृष्टि तथा अतिवृष्टि आदि खेती को विषम बना देती हैं जिससे खेती मुनाफे का व्यवसाय नहीं रह जाता है। अतः इन स्थानों के लिए हरित गृह तकनीकी द्वारा फसल उगाना काफी लाभप्रद हो जाता है। सामान्यतः हरित गृह एक ऐसा चौखटेदार ढांचा है जो पारदर्शी या अर्द्ध–पारदर्शी पॉलीथीन सीट, कांच या पॉली–कार्बोनेट सीट से ढका रहता है। इस सीट की आयु लगभग 3–4 वर्ष तक होती है। वर्तमान में यह सीट 200 माइक्रोन मोटी होती है। पॉलीहाऊस, ग्लासहाऊस या पॉलीकार्बोनेट हाऊस को "हरित गृह" के नाम से भी जाना जाता है। यह पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराता है। इसके अन्दर फसलों को नियंत्रित वातावरण में उगाया जाता है। हरित गृह 'हरित गृह प्रभाव' के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं जिसके कारण इनके अन्दर का तापमान बाहर की अपेक्षा अधिक होता है। साधारणतः हरित गृह में तापमान नियंत्रण ही मुख्य क्रिया होती है। परन्तु आवश्यकतानुसार आर्द्रता, प्रकाश स्तर, प्रकाश अवधि, कार्बन–डाई–आक्साइड तथा पोषक तत्व भी नियंत्रित किए जा सकते हैं। यह पदार्थ सेलेक्टिव फिल्म की भांति काम करता है जिससे सोलर रेडिएशन तो अन्दर आ जाता है परन्तु थर्मल

रेडियेशन अन्दर ही समाहित रह जाता है। इस प्रकार अन्दर का तापमान बढ़ जाता है। इस तकनीक का विकास होने से अब अनेक तरह की सब्जियां जैसे चप्पन कद्दू, करेला, टमाटर, मटर, बीन, गोभी, पालक, मूली, धनिया, मेथी इत्यादि सरलता से वर्षभर उगायी जा सकती हैं। ये फसलों को सर्दी, पाला व गर्म हवाओं से भी बचाती हैं। फसलों की अग्रिम पौध समय से पूर्व तैयार कर अगेती फसल उगायी जा सकती है। वर्षभर किसान भाई तीन या चार फसलें उगाकर इस तकनीकी से अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सब्जी उत्पादन हेतु जहां तक हो सके, जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए जिससे फसल उत्पादों की गुणवत्ता व स्वाद बना रहे। साथ ही स्वास्थ्य पर रसायनों का कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। चार व्यक्तियों के परिवार के लिए 10 मी. 5 मी. 5 मी. आकार का ग्रीन हाऊस पर्याप्त होता है। इस तकनीक के विकास द्वारा न केवल ताजी सब्जियां उपलब्ध हो जाती हैं, बल्कि रोजगार के साधन बढ़ाने में भी मदद मिलती है।

पीली क्रान्ति

1980 के दशक में जब देश का खाद्य तेल आयात चितांजनक स्तर पर पहुंच गया तब भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने स्वयं हस्तक्षेप करके तिलहन पर तकनीकी मिशन शुरू कराया। इसके अन्तर्गत सिंचित क्षेत्रों में तिलहनों की खेती को प्राथमिकता दी गयी। कई उन्नत/संकर तिलहन प्रजातियों का विकास किया गया। परिणामस्वरुप तिलहन उत्पादन में बढ़ोतरी दर्ज की गई। वर्ष 1986–87 में तिलहन उत्पादन 11 मिलियन टन था जो 1994–1995 में 22 मिलियन टन तक पहुंच गया। इस प्रकार खाद्य तेलों के मामले में भारत ने कुछ हद तक आत्मनिर्भरता हासिल कर ली। उप–उत्पाद खली आदि के निर्यात से विदेशी मुद्रा की कमाई भी होने लगी। इसे पीली क्रान्ति के नाम से जाना गया।देश में तिलहनों की खेती छोटे और सीमान्त किसानों द्वारा की जाती है। तिलहनों की बुवाई, कटाई, पेराई वर्ष भर चलती रहती है जिसमें गांव के अकुशल श्रमिकों को रोजगार मिलता रहता है। इस प्रकार लोगों को पौष्टिक खाद्य तेल भी मिलता रहता है। साथ ही उदारीकरण की नीतियों और आसियान देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौतों के कारण भारत को सस्ते में पामोलिव तेल मिलने लगा तो उसने तिलहन उत्पादकों को नजरअंदाज करना शुरू कर दिया। इसके साथ ही खाद्य तेल आयात में बढ़ोतरी होने लगी और देखते ही देखते भारत दुनिया का सबसे बड़ा खाद्य तेल आयातक देश बन गया। इस बदलाव में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भी बड़ी भूमिका रही। उन्होंने अफवाह फैला दी कि सरसों के तेल में आर्जीमोन नामक खरपतवार के बीजों का तेल मिलाया जाता है जो खाने योग्य नहीं है। अतः सरसों के तेल को शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। इससे पामोलिव व सोयाबीन तेल के आयात को भी बढ़ावा मिला। आज कुल खाद्य तेल आयात में इनकी हिस्सेदारी 50 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2012–13 में देश का खाद्य तेल आयात 102 लाख टन के आंकड़े को पार कर गया। जिसके लिए हमें 50 हजार करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ी।

कीट नियंत्रण की पर्यावरण हितैषी तकनीक

कीट फसलों की लक्षित उपज को प्राप्त करने में बाधक हैं। कीट हमारी फसलों में औसतन 24.75 प्रतिशत की हानि करते हैं। ये फसलों को मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों तरह से प्रभावित करते हैं। कीट नियंत्रण के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि वे फसलों को कब व कैसे नुकसान पहुंचाते हैं। आजकल बहुत सी नई–नई तकनीकियां कीटों के प्रबंधन में उपयोग की जाती हैं। इन तकनीकों में बांध्य कीट तकनीकी, जैव नियंत्रण (जीवाणु, विषाणु एवं निमेटोड), समन्वित कीट प्रबंधन, जंगरोधक द्वारा, कीट को आकर्षण व दूर करने वाले पदार्थों का प्रयोग, कीट वृद्धि नियामक हार्मोन्स का प्रयोग, फेरोमेन ट्रेप व प्रकाश प्रपंच आदि का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा जैव तकनीकी द्वारा सूक्ष्मजीवों के कुछ ऐसे जीन पौधों में डाल दिए गए हैं जिसके कारण ये विषैले जीन कीटों की वृद्धि, विकास व प्रजनन में बाधा उत्पन्न करते हैं। इन तकनीकों का पर्यावरण तथा समाज पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि ये सभी प्राकृतिक रूप से

आसानी से प्रभावहीन हो जाते हैं। इनका मानव शरीर पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। खाद्य पदार्थों में भी इनका अवशेष ना के बराबर होता है क्योंकि इनकी विषाक्तता प्रकाश में जल्दी ही नष्ट हो जाती है। कीट प्रबंधन में कीट की हानिकारक अवस्था, प्रजनन क्षमता और जीवनकाल आदि का ज्ञान बहुत जरूरी है। तभी हम कीटों से अपनी बहुमूल्य फसलों को बचा सकते हैं। कीट नियंत्रण हार्मोन्स सूंडी अवस्था पर सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं। इनके प्रयोग से कीटों में कुछ विकास रूक जाता है या फिर विकास होता ही नहीं है।

बायो ईंधन : खनिज तेलों की बढ़ती कीमतें और उनकी कम उपलब्धता तथा इससे होने वाले प्रदूषण को कम करने के लिए गत वर्षों में इथेनाल सबसे महत्वपूर्ण वैकल्पिक जैव ईंधन के रूप में उभरा है। इसे पेट्रोल के साथ मिलाकर गैसोहोल बनाया जाता है जिसमें आक्सीजन होने के कारण ईंधन का पूरी तरह अंतःदहन हो जाता है। परिणामस्वरूप हानिकारक पदार्थों का उत्सर्जन कम से कम होता है। भारत में सन् 2003 में जैव ईंधन मिशन प्रारम्भ किया गया था। इस सम्बन्ध में भारत सरकार ने सितम्बर, 2008 में जैव ईंधन नीति की घोषणा की जिसमें यह कहा गया है कि सन् 2017 तक खनिज तेलों में 20 प्रतिशत जैव ईंधन मिलाया जाएगा। जैव ईंधन का उत्पादन करंज, जट्रोफा, नीम, करड़ी, और महुआ जैसे अखाद्य तेलों से किया जाता है। मक्का, ज्वार, गन्ना व चुकन्दर आदि ऐसी फसलें हैं जिनमें शर्करा होती है तथा इनका उपयोग इथेनॉल के उत्पादन में किया जा सकता है। वर्तमान में भारत में जैव ईंधन के उत्पादन पर काफी जोर दिया जा रहा है। हमारे देश में अखाद्य तेलों के स्रोत के रूप में बहुउद्देशीय वृक्षों जैसे जट्रोफा और करंज का प्रयोग जैव ईंधन के उत्पादन के लिए किया जा रहा है। इन वृक्षों का रोपण कम उपजाऊ, परती व बंजर पड़ी भूमि में किया जा रहा है। करंज के पौधों की जड़ों में पायी जाने वाली ग्रन्थियों में रहने वाले बैक्टीरिया वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन का भूमि में स्थिरीकरण करते हैं जिससे मृदा का उपजाऊपन बढ़ता है। साथ ही जंगलों की जैवविविधता को भी बढ़ावा मिलता है। करंज में कार्बन का संचय करने की काफी क्षमता होती है। अतः यह वृक्ष पर्यावरण प्रदूषण कम करने में भी सहायक है। इसके बीजों में 30–40 प्रतिशत तेल पाया जाता है जिसे जैव ईंधन में आसानी से बदला जा सकता है।

बी.टी. कपास का विकास

आजकल भारत में बी.टी. कपास का क्षेत्रफल दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। बी.टी. शब्द मिट्टी में पाए जाने वाले जीवाणु बैसिलस थुरिजैन्सिस से लिया गया है। इस जीवाणु में पाए जाने वाला जीन (बी.टी. जीन) एक तरह का विषैला पदार्थ पैदा करता है। वैज्ञानिकों ने विषैला पदार्थ पैदा करने वाले जीन को इस जीवाणु में से निकालकर आनुवांशिक अभियांत्रिक तकनीक द्वारा कपास की फसल में डालकर कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया। जब कीट इन पौधों के आर्थिक महत्व के भागों को खाता है तो विषैले पदार्थ को खाकर मर जाता है। किसानों द्वारा बी. टी. कपास उगाने से उनको कीटनाशक दवाईयों का कम छिड़काव करना पड़ता है जिससे उनको आर्थिक लाभ भी अधिक होता है। कपास के निर्यात से देश को लगभग 76000 करोड़ रुपये की आर्थिक आमदनी होती है। कपास की देश व विदेश में बढ़ती मांग के चलते भारत कपास निर्यातक देशों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

धान उगाने की एस.आर.आई. विधि

धान की खेती में सिस्टम ऑफ राइस इन्टेन्सीफिकेशन (एस.आर.आई.) तकनीक को अपनाने से प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन के साथ मृदा, समय, श्रम और अन्य साधनों का अधिक दक्षतापूर्ण उपयोग होना पाया गया है। एस.आर.आई तकनीक के पांच प्रमुख घटक हैं। धान के 10–12 दिन के नवजात पौधों का रोपण, एक स्थान पर केवल एक ही पौधे की रोपाई, अधिक दूरी पर वर्गाकार पौधारोपण, सीमित सिंचाई कर पानी की बचत, बार–बार खेत में खरपतवार नियंत्रण हेतु कृषि क्रियाओं द्वारा वायु के अधिक से अधिक आवागमन को बरकरार रखना तथा अधिक से अधिक जैविक खादों का प्रयोग करना। इस विधि में एक हेक्टेयर खेत हेतु पौध तैयार करने के लिए मात्र 100 वर्गमीटर क्षेत्रफल तथा मात्र 7.5 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है । इस विधि में 10–12 दिन पुरानी पौध के एक–एक पौधे की 25–25 से. मी. अथवा 30–30 से. मी. की दूरी पर रोपाई की जाती है। इसके बाद अत्यंत हल्की सिंचाई करते हैं और खेत को लगभग नम अवस्था में रखा जाता है। खेत में पानी खड़ा हुआ नहीं रखते हैं। जल निकास की उचित व्यवस्था की जाती है जिससे पौधों की वृद्धि और विकास के समय मृदा केवल नम बनी रहे। इस प्रकार धान के खेतों में मृदा वायुवीय दशाओं में रहती है, और मृदा में डीनाइट्रीफिकेशन की क्रिया द्वारा दिए गए नाइट्रोजन उर्वरकों का कम से कम ह्रास होता है। साथ ही धान के खेतों से नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन भी नगण्य होता है। इस विधि में जड़ों के अच्छे विकास, कल्लों के फुटाव में बढ़ोतरी, प्रभावी कल्लों की अधिक संख्या, खेत में फसल न गिरने एवं पोषक तत्वों की उच्च उपयोग दक्षता के कारण न केवल परम्परागत धान उगाने की विधि की अपेक्षा अधिक उपज मिलती है बल्कि 30–40 प्रतिशत तक सिंचाई जल की भी बचत होती है। साथ ही उत्पादन लागत घटने में शुद्ध लाभ अधिक प्राप्त होता है। इस विधि का

महत्वपूर्ण पहलू पर्यावरण सुधार भी है। प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर प्रयोग और अन्य आदानों जैसे–उर्वरक व कीटनाशकों का कम प्रयोग होने से यह विधि पर्यावरण हितैषी भी है। क्योंकि इस विधि में खेतों में पानी खड़ा नहीं होता जिससे उनमें मीथेन व नाइट्रस आक्साइड गैसों का निर्माण नहीं होता है तथा भूमि जैव–विविधता भी बढ़ती है। साथ ही दिए गए नाइट्रोजन उर्वरकों का लींचिंग द्वारा नाइट्रेट के रूप में कम से कम ह्रास होता है। अतः इस विधि को किसानों में लोकप्रिय बनाने के लिए अत्यधिक प्रचार–प्रसार की जरूरत है।

ई–खेती की ओर बढ़ते कदम

वर्तमान परिवेश में, जहां किसानों के घर–घर तक टेलीफोन, मोबाइल और कम्प्यूटर पहुंचे हैं, वहीं संचार क्रान्ति से कृषि विज्ञान के क्षेत्र में पहले की अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है। सूचना क्रान्ति ने इतनी तेजी से भारत के हर गांव तक अपने पैर पसार लिए हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों को भी इसका अनुमान नहीं था। आज सुदूर गांव में बैठा किसान इंटरनेट के माध्यम से पलक झपकते ही कृषि सम्बन्धी सारी जानकारियां हासिल कर रहा है। कृषि विज्ञान सम्बन्धी नवीनतम व अत्याधुनिक जानकारियों के प्रचार–प्रसार में इंटरनेट महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसके माध्यम से न केवल किसानों की मानसिकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहे हैं बल्कि वे आर्थिक रूप से पहले से सम्पन्न हुए हैं। आज किसान ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन व बिगड़ता मृदा स्वास्थ्य जैसी गम्भीर समस्याओं के बारे में पूरी तरह जागरूक हैं। आज किसानों के पास सूचनाएं और नई–नई जानकारियां प्राप्त करने के कई माध्यम हैं। परन्तु कृषि से जुड़ी किसी भी समस्या का समाधान करने के लिए इंटरनेट सबसे प्रभावी, सरल व आसान माध्यम है। आज किसान देश के किसी भी कोने से ई–मेल कर अपनी कृषि सम्बन्धित किसी भी समस्या का हल पा सकता है। यह सुविधा हिन्दी सहित सभी भाषाओं में उपलब्ध है। आज देश भर के किसान बड़े पैमाने पर इसका इस्तेमाल कर लाभान्वित हो रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग, मौसम सम्बन्धी जानकारी, फसल उत्पादन बढ़ाने सम्बन्धी, मृदा उर्वरता व उत्पादकता सम्बन्धी तथा भूमि सम्बन्धी रिकार्डों के कम्प्यूटरीकरण में भी किया जा रहा है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में ई–चौपाल केन्द्रों की भी स्थापना हो रही है। देश के अनेक भागों में हजारों से अधिक ई–चौपाल केन्द्र आवश्यक जानकारी देकर कृषि और किसानों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। ये केन्द्र इंटरनेट के माध्यम से किसानों को टिकाऊ खेती, मधुमक्खी पालन, पशुपालन, मंडी–भाव व बागवानी आदि से सम्बन्धी सभी जानकारियां उपलब्ध करा रहे हैं। आज देश के अनेक किसानों के पास इंटरनेट तथा ब्राडबैंड कनेक्शनों की सुविधा उपलब्ध है।

इंटरनेट के क्षेत्र में भी अगला बड़ा बाजार भारत के किसान ही हैं। रूरल बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग की नजरें भी कृषि क्षेत्रों पर हैं। अब गांवों में जगह–जगह साइबर कैफे खुल रहे हैं जहां से किसान आसानी से अपनी जरूरतों के बारे में जानकारी हासिल कर सकते हैं। कृषि विकास के साथ ही अन्य क्षेत्रों के बारे में भी इंटरनेट का प्रयोग कर जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। इससे एक तरफ किसानों का ज्ञान बढ़ रहा है तो दूसरी तरफ आने वाले समय में बड़े पैमाने पर रोजगार की सम्भावनाएं पैदा होंगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इंटरनेट के प्रसार से किसानों की महत्वपूर्ण सूचनाओं तक पहुंच आसान हुई है। इंटरनेट किसानों, वैज्ञानिकों और सरकार के मध्य सम्पर्क सेतु का कार्य करता है। इसके माध्यम से सरकारी योजनाओं और कृषि अनुसंधान सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएं सीधे तौर पर किसानों तक पहुंचती हैं। इंटरनेट सुविधाओं के कारण ही आज भारत का कुल खाद्यान्न उत्पादन 259 मिलियन टन को पार कर गया है। किसानों के कल्याण और उनकी प्रगति के लिए इंटरनेट सेवा को दुरूस्त करने की जरूरत है जिससे 'जय जवान, जय किसान और जय विज्ञान' का नारा निरन्तर आगे बढ़ता रहे।

(लेखक सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में कार्यरत हैं।)
ई–मेल : v.kumarnovod@yahoo.com

जैविक कृषि तकनीक की संभावनाएं

तुलसीराम दहायत एवं डॉ. केशव टेकाम

जैविक कृषि खेती की वह पुरानी पद्धति है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके जैविक खाद तैयार की जाती है। भारतीय कृषि में शुद्ध जैविक खेती को अपनाकर रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल में कमी लाने की संभावना मौजूद है। जैविक खेती को अपनाने के लिए समन्वित पोषण प्रबंधन, समन्वित कीटनाशक प्रबंधन और जैविक नियंत्रण विधियों को सशक्त करने की जरूरत है ताकि रसायनों की जरूरतों में कमी हो सके।

भावी पीढ़ी को जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों का सामना बड़े स्तर पर करना होगा। बढ़ती जनसंख्या की वजह से सीमित भाग में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र दोहन हुआ है। भूमि की उर्वराशक्ति, खनिज, भूमिगत जल, आदि ऐसे संसाधन हैं जिनकी भरपाई मुश्किल है। वर्ष 2000 तक हम 20 करोड़ टन अनाज पैदा करते थे जिसकी आवश्यकता 2020 में बढ़कर 36 करोड़ टन हो जाएगी। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह–तरह की रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों का उपयोग प्रकृति के जैविक व अजैविक पदार्थों के बीच आदान–प्रदान के चक्र (इकोलॉजिकल सिस्टम) को प्रभावित करता है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति खराब हो जाती है। साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है व मानवीय स्वास्थ्य में गिरावट आती है। उत्पादन वृद्धि को प्राप्त करने के लिए भूमि की स्थिरता बनाए रखते हुए गहन उत्पादन करना ही एकमात्र समाधान है, लेकिन लंबी अवधि के उर्वरक प्रयोगों से पता चलता है कि रसायनिक उर्वरकों के अकेले प्रयोगों से न तो भूमि की उर्वरता और न ही उत्पादन वृद्धि का स्थायित्व बनाया रखा जा सकता है। इनके साथ ही रसायनिक उर्वरकों की उपलब्धता एवं मूल्य दोनों कृषकों की पहुंच में नहीं है। अतः आवश्यक हो गया है कि उत्पादन हेतु पूर्णतः उर्वरकों पर निर्भर न रहकर उपलब्ध पोषक तत्वों के वैकल्पिक स्रोत कार्बनिक खाद, हरी खाद व जैव उर्वरकों

का भी उपयोग किया जाए जिससे उत्पादन में टिकाऊ वृद्धि के साथ ही मृदा के भौतिक–रसायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार हो सके। इस प्रकार की सभी समस्याओं से निपटने के लिए सरकार ने गत वर्षों में निरंतर टिकाऊ खेती के सिद्धांत पर खेती करने की सिफारिश की है जिसे हम "जैविक खेती" के नाम से जानते हैं।

क्या है जैविक कृषि – जैविक कृषि खेती की वह पुरानी पद्धति है जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके जैविक खाद तैयार की जाती है। नेशनल प्रोग्राम ऑन आर्गेनिक प्रोडक्शन के अनुसार जैविक कृषि एवं कृषि प्रणाली एक प्रबंध है, जो एक परिस्थितिकीय तंत्र को तैयार करता है जिसमें कृत्रिम बाह्य आदान जैसे रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग के बिना स्थायी उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जैविक खेती के दो उद्देश्य हैं। पहला, प्रणाली को टिकाऊ बनाना और दूसरा उसे पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना है। इन दोनों लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए ऐसे मानक तैयार करने की जरूरत है जिनका अनुसरण हो। भारतीय कृषि में शुद्ध जैविक खेती को अपनाकर रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल में कमी लाने की संभावना मौजूद है। जैविक खेती को अपनाने के लिए समन्वित पोषण प्रबंधन, समन्वित कीटनाशक प्रबंधन और जैविक नियंत्रण विधियों को सशक्त करने की जरूरत है ताकि रसायनों की जरूरतों में कमी हो सके।

जैविक खाद – कृषि से उत्पादित ऐसे पदार्थ जिनका उपयोग खाद्यान्नों के तौर पर नहीं होता है उन पदार्थों का प्रकृति सम्मत सरल विधि से खाद तैयार किया जाता है। इस संबंध में अनंतकाल से गांवों में एक कहावत प्रचलित है, "केंचुए किसान के मित्र होते हैं।" यह अब वर्तमान में कृषि वैज्ञानिकों ने प्रमाणित कर दिया है कि केंचुए खेती की उर्वरता बढ़ाने में जो सहायता करते हैं वह यांत्रिक रूप से नहीं की जा सकती है। केंचुए से जैविक खाद का निर्माण वर्तमान सदी की देन है जिसका एक उत्प्रेरक की तरह उपयोग किया जाता है। वैसे तो केंचुए की अनेक प्रजातियां उपलब्ध हैं किन्तु जैविक खाद निर्माण के लिए अफ्रीकन नाइट क्राउलर सर्वोत्तम है। पूरे उत्तर भारत में जलकुंभी ने अपना पड़ाव बना लिया है। इसका फैलाव कृषि वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। ऐसे समय में इस खरपतवार का सदुपयोग खाद बनाने में किया जा सकता है। यहां एक अनुपयोगी जैविक पदार्थ को उपयोगी बनाया गया है। अब तक जो खरपतवार समस्या बना हुआ था उसका सदुपयोग हरी खाद/जैविक खाद बनाने में अप्रत्याशित सफलता का सकारात्मक उदाहरण है। केंचुए की खाद में सामान्य कम्पोस्ट की खाद से 40–45 प्रतिशत अधिक पोषक तत्व होते हैं। साथ में एक और विशेषता होती है कि खेत को यह खाद अधिक उपजाऊ बनाती है। व्यावहारिक प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि केंचुए की खाद के द्वारा सामान्य खाद से दुगुना उत्पादन होता है। खाद को खेती में रबी की फसल में, खरीफ की फसल के कटने के बाद 2–3 जुताई के बाद डाले जाने पर यह खेत की निचली सतह में न केवल नमी बनाए रखती है अपितु खेती की उर्वरा–शक्ति बनाए रखती है।

जैविक कृषि से होने वाले लाभ

- भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।
- सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है।
- रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से काश्त खेती लागत में कमी आती है।
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।
- जैविक खाद का उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है।
- भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होता है।
- भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है।
- मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।

- कचरे का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जाता है जिससे गंदगी कम होती है और बीमारियों में कमी आती है।

कृषकों के अनुभव – मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में स्थित साईं टेक्नो क्राप्स केयर के मैनेजर श्री राकेश सिंह कहते हैं कि किसानों की फसलों में जैविक कृषि के प्रयोग से आश्चर्यजनक सुधार देखा गया है। किसानों को जैविक खाद एवं उर्वरक के उपयोग की सलाह एवं मार्गदर्शन देकर कृषि फसल में लगभग तीन गुना तक विकास देखा गया है। जैविक खेती में किसी भी तरह का नकारात्मक प्रभाव नहीं होता है। इस पद्धति में फसल उत्पादन लागत रासायनिक पद्धति की तुलना में लगभग आधी आती है। इस प्रणाली को लगातार अपनाने से मृदा का विकास होता है और मानवीय स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है।

मध्य प्रदेश के ही कटनी, उमरिया, अनूपपुर, जबलपुर, बालाघाट, नरसिंहपुर, मंडला, सागर में तकरीबन 200 चयनित गांवों में जैविक खेती किसानों द्वारा की जा रही है। किसानों का मानना है कि बीजोपचार करने पर परिणाम अच्छा प्राप्त होता है। जबलपुर जिले की पाटन तहसील में जैविक खेती करने वाले किसानों की फसलें अन्य किसानों की तुलना में ओलावृष्टि के कारण बर्बाद होने से बच गई तथा तुलनात्मक रूप से कम फसल खराब हुई है जिसका कारण यह था फसल समय पर पक गई थी जबकि अन्य खाद का उपयोग करने वाले किसानों की फसल देर से पकने के कारण ज्यादा प्रभावित हुई है। जबलपुर जिले की पाटन तहसील में हरा मटर किसान द्वारा मौसम के प्रतिकूल प्रभाव के बावजूद चार बार तोड़ा गया जो अन्य किसानों द्वारा एक या दो बार तोड़ा गया। प्रदेश के ही उमरिया जिले के धनवाही ग्राम में सुजीत सिंह बताते हैं कि वे प्रतिवर्ष धान का उत्पादन लगभग 20 क्विंटल प्रति एकड़ करते थे परन्तु जैविक खाद का उपयोग करने से उनका उत्पादन प्रति एकड़ इस वर्ष 35 क्विंटल हो गया। रीवा जिले के मटौली ग्राम में श्री रामकलेश सिंह ने सब्जी के उत्पादन में जैविक खाद का उपयोग किया। उनका कहना है कि इससे न केवल उत्पादन में वृद्धि हुई वरन् उनके यहां की सब्जी की मांग भी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई। प्रदेश के कटनी जिले में किसान द्वारा प्रति एकड़ 16–17 क्विंटल गेहूं का उत्पादन किया जाता है। जैविक खाद का उपयोग करने से गेहूं का उत्पादन प्रति एकड़ 25–28 क्विंटल हो गया। इस प्रकार किसानों के अनुभव यह बताते हैं कि जैविक खाद के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई, उपज में वृद्धि देखी गई, मौसमी प्रभाव का असर भी तुलनात्मक रूप से कम हुआ है।

समस्याएं

- खेती की तकनीकों के बारे में जागरुकता का अभाव होना।
- किसानों के पास कम्पोस्ट तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल की जानकारी के साथ ही उसके प्रयोगों की जानकारी का भी अभाव है।

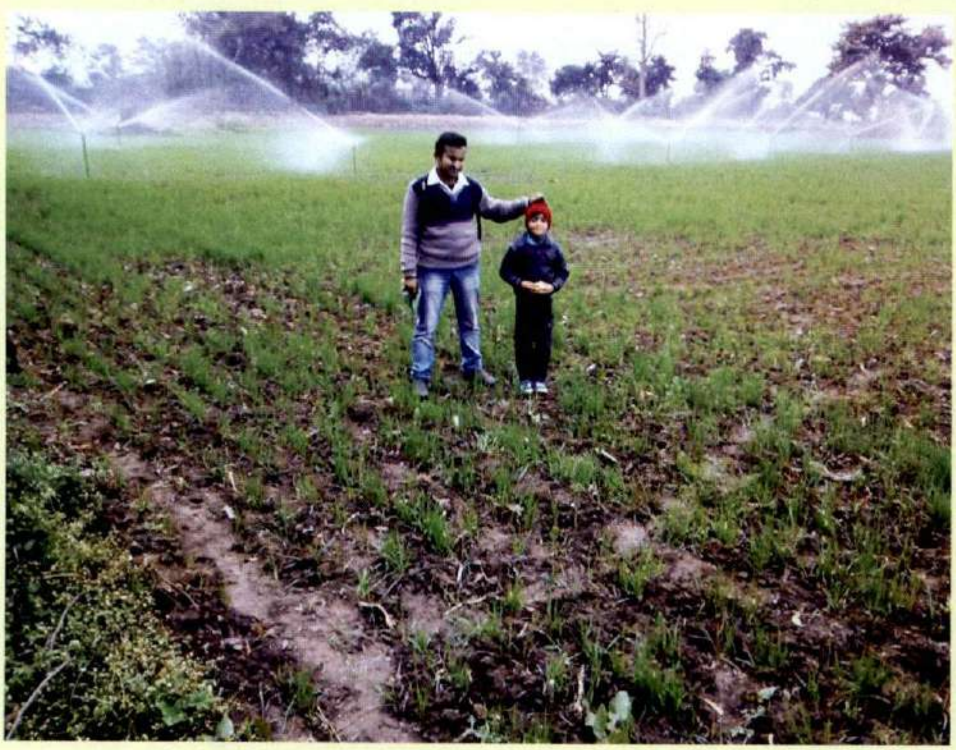

- जैविक कम्पोस्ट तैयार करने के बारे में किसानों को समुचित प्रशिक्षण देने की जरूरत है।
- ऐसा प्रमाण मिलता है कि राजस्थान में जैविक गेहूं के किसानों को गेहूं के पारंपरिक किसानों की तुलना में कम कीमतें मिली। दोनों प्रकार के उत्पादों की विपणन लागतें भी समान थी और गेहूं के खरीददार जैविक किस्म के लिए अधिक कीमत देने को तैयार नहीं थे।
- जैविक पदार्थों का अभाव उपलब्ध जैविक पदार्थ जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।
- देश में रासायनिक उर्वरकों और

कीटनाशकों के खुदरा विक्रेताओं को अधिक लाभ होने और उत्पादकों द्वारा भारी– भरकम विज्ञापन अभियान चलाने के कारण भी जैविक सामग्रियों के बाजारों के लिए समस्याएं हैं।

- जागरुकता की कमी।
- सहायता के लिए अपर्याप्त सुविधाएं।
- वित्तीय समर्थन का अभाव।
- निर्यात की मांग को पूरा करने में अक्षमता।

संभावनाएं

- जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए भारत में सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण अनुकूल है। कई कारणों से छोटे व सीमांत किसानों ने अब तक कृत्रिम खेती को पूरी तरह से नहीं अपनाया है। वे पर्यावरण हितैषी पारंपरिक प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं।
- भारत जैसे देश में जैविक खेती को अपनाकर कई प्रकार से लाभ लिया जा सकता है। उत्पादों के लाभकारी मूल्य, मिट्टी की उर्वरा और जल की मात्रा के रूप में प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, मृदाक्षरण की रोकथाम, प्राकृतिक और कृषि जैवविविधता का संरक्षण आदि उनमें शामिल हैं। इसके माध्यम से ग्रामीण रोजगार सृजन में कमी, उन्नत घरेलू पोषण, स्थानीय खाद्य सुरक्षा तथा बाहरी चीजों पर निर्भरता में कमी जैसे आर्थिक तथा सामाजिक लाभ भी प्राप्त होंगे। इस प्रकार जैविक खेती से पर्यावरण का संरक्षण होगा और मानवीय जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होगी।
- भारत में जैविक खेती की संभावनाओं के लिए मध्य प्रदेश एक अच्छी जगह हो सकती है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दोनों बाजारों में अधिक लाभकारी कीमतें और उनकी आपूर्ति में कमी होना भारत के लिए एक अवसर जैसा है।
- राष्ट्रीय बागवानी मिशन पिछड़े और अगड़े क्षेत्रों के बीच संपर्क सुनिश्चित करता हुआ अनेक क्रियाकलाप करता है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि केवल वही क्रियाकलाप शामिल किए जाएं जिनका उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने में सकारात्मक प्रभाव पड़े।
- भारत के प्रत्येक राज्य व केन्द्रशासित प्रदेश को जारी किए गए मार्ग–निर्देशकों और तकनीकी पुस्तिकाओं के आधार पर जैविक खेती पर आधारित कार्यक्रमों को लागू करना चाहिए।
- प्रमाणित जैविक उत्पादों के विपणन की व्यवस्था होनी चाहिए। जैविक खेती का कार्यक्रम चयनित और कम्पोस्ट क्लस्टरों में प्रमाणन के साथ जुड़ा होना चाहिए न कि भिन्न–भिन्न तरीके से। इस बारे में लोगों की जागरुकता बढ़ानी चाहिए।
- भारत के राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को केवल उन्हीं क्षेत्रों के लिए जैविक खेती के लिए प्रस्ताव दाखिल करना चाहिए जिन्हें पहले से जैविक खेती के अधीन शामिल किया गया हो।

स्वास्थ्य एवं पोषण के संबंध में जैविक कृषि के लाभ लोकप्रिय हैं। अधिक से अधिक किसानों को जैविक कृषि, जैविक आदानों का खेत में उत्पादन तथा ऐसे खेतों को उचित जैविक प्रबंधन के अंतर्गत लाने की आवश्यकता है। साथ ही ऐसे किसानों को पर्याप्त प्रोत्साहन की भी आवश्यकता है ताकि उत्पाद की मात्रा एवं गुणवत्ता में वृद्धि की जा सके और कीमतों में कमी लाई जा सके। इसके अलावा उचित विपणन रणनीतियों की खोज की आवश्यकता है ताकि किसानों को उनके उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मक कीमत सुनिश्चित की जा सके।

(लेखक क्रमशः सहायक प्राध्यापक शास. कन्या महाविद्यालय, दमोह व सहायक प्राध्यापक, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश में कार्यरत हैं।)
ई–मेल : tulsiram.dahayat@gmail.com

कृषि तकनीक से सुधरता ग्रामीण जीवन-स्तर

विकास कुमार सिन्हा

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। जिस देश में एक अरब 35 करोड़ की जनसंख्या हो, उस देश के लोगों को खाद्य आपूर्ति बहुत बड़ी चुनौती है। देश के किसानों को अगर नई तकनीक से लैस नहीं किया जाए, तो सभी लोगों को खाद्य सामग्री उपलब्ध कराना सहज नहीं होगा। हमारे देश में कई कृषि विश्वविद्यालय हैं, जो किसानों को नई तकनीक बता रहे हैं। नई विधि से खेती के उपाय बताये जा रहे हैं। नए और हाईब्रिड बीज से कैसे ज्यादा से ज्यादा उत्पादन हो सके, इस पर शोध किए जा रहे हैं। कई स्वयंसेवी संस्थाएं और भारत सरकार का कृषि मंत्रालय भी कई योजनाओं का क्रियान्वयन कर रहा है।

एसआरआई विधि ने दिलायी नई पहचान

देश के कई प्रदेशों में जहां जंगल और पहाड़ हैं, जीवंत नदियों की कमी है। झरनों और नालों से घिरे इन प्रदेशों में किसानों को नई तकनीक ही जीवित रखे हुए है। हालांकि इन प्रदेशों में किसानों का पलायन काफी है लेकिन कृषि में नई तकनीक और सरकार की कई योजनाएं भी पलायन को रोकने में सफल रही हैं। देश का झारखंड प्रदेश जंगलों और खनिजों वाला राज्य है। इस पठारी राज्य में कृषि कार्य करने वाले किसान अगर बिना तकनीक की खेती करें, तो उन्हें खेती से कोई लाभ नहीं मिलता।

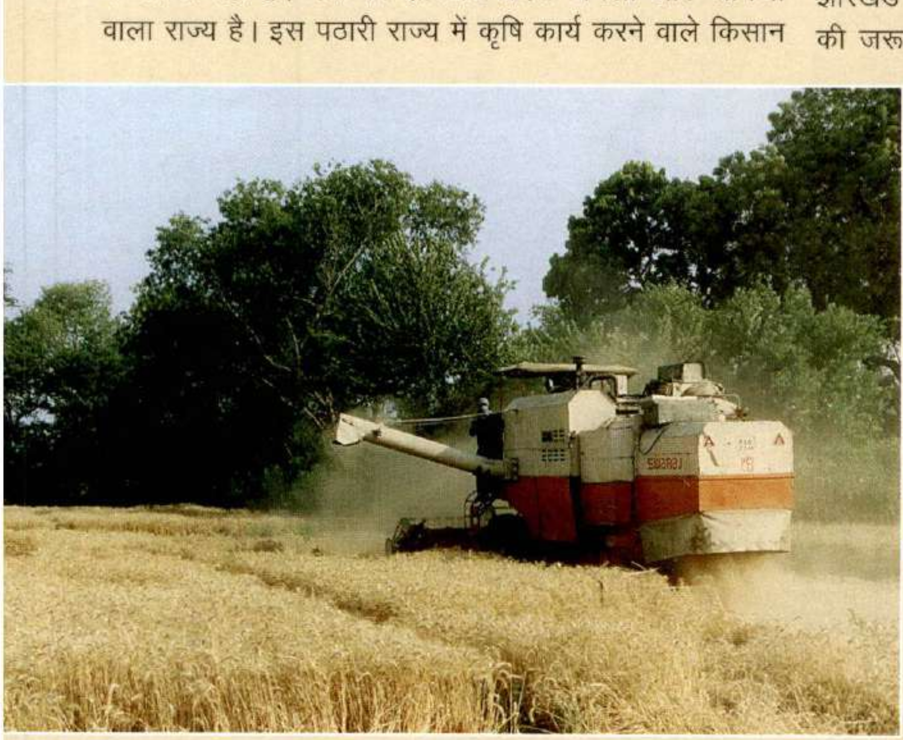

आंकड़े बताते हैं कि झारखंड के कुल भौगोलिक क्षेत्र 79 लाख हेक्टेयर में सिर्फ 22 लाख हेक्टेयर ही कृषि योग्य भूमि है। राज्य की कृषि मुख्यतः बारिश पर ही निर्भर है और हर साल औसतन 1200 से 1600 मिमी. बारिश होती है। ऐसी स्थिति में झारखंड में धान सहित अन्य फसलों की खेती को प्रोत्साहन देने की जरूरत है।, इसमें कृषि की उन्नत तकनीको को अपना कर कम लागत में और कम जमीन का उपयोग करके अधिक उत्पादन को सुनिश्चित किया जा सके। धान की परंपरागत खेती के लिए पानी की अधिक आवश्यकता होती है। धान के खेत में पानी दो से तीन इंच तक भरा होना चाहिए। प्रदेश में धान का औसत उत्पादन 14 से 18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है, जो बहुत कम है। भविष्य में पानी की बढ़ती मांग को देखते हुए खेती की एक नई विधि इजाद की गई, जिससे झारखंड के किसानों को लाभ हो सके। इस विधि को अपनाने वाले किसानों में भी खुशी है।

रांची स्थित एसआरआई ने सरकार से मिलकर एसआरआई विधि को किसानों तक पहुंचाने का बीड़ा उठाया है। एसआरआई तकनीक से आज किसानों को लाभ भी हो रहे हैं। एसआरआई विधि को धान की सघनीकरण विधि की भी संज्ञा दी गई है। अगर परंपरागत विधि से हम खेती करते हैं, तो एक किलोग्राम

चावल की पैदावार में लगभग 5000 लीटर पानी की जरूरत होती है। यदि हम एसआरआई विधि से खेती करते हैं, तो वर्तमान में धान की खेती के लिए उपयोग हो रहे पानी से सिंचित क्षेत्र में 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी कर सकते हैं। साथ ही साथ कम लागत में किसान मुनाफा कमा सकते हैं। सोसायटी फॉर रूरल फंडामेंटल एसआरआई विधि से धान की खेती के लिए लोगों को प्रशिक्षण भी मुहैया करा रहा है।

सेंटर ऑफ वर्ल्ड सालिडरैटी बिहार प्रदेश युवा परिषद, महिला ट्रस्ट के साथ मिलकर यूरोपियन यूनियन वेल्थ की वित्तीय सहायता से रांची, लातेहार व हजारीबाग जिलों में महिला आदिवासी दलित समुदाय के युवाओं के लिए अल्प अवधि का प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन कर रहा है। एसआरआई विधि से धान की खेती को काफी बढ़ावा मिल रहा है। इस विधि से खेती के लिए कम बीज की आवश्यकता है। नर्सरी में बीज की दूरी के बारे में बताया जाता है। इससे कम बीजों की खपत होनी चाहिए। खेतों में कम पानी भरा जाता है। इस क्रम में यानी 10–14 दिनों के पौधों का रोपण गहराई में किया जाता है। इस विधि में खरपतवार को मिट्टी में मिला दिया जाता है, जो खाद का काम करते हैं। इस विधि में जैविक खाद का प्रयोग किया जाता है एवं रोग एवं कीटों पर जैविक नियंत्रण होता है। परंपरागत खेती में प्रति एकड़ 20 से 30 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है, परंतु एसआरआई विधि से प्रति एकड़ दो से ढाई किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

एसआरआई विधि से धान की ज्यादा पैदावार होती है। प्रति पौधे कल्लों की लंबाई ज्यादा होती है। बालियों की लंबाई ज्यादा होती है। दानों वाली बालियों की संख्या ज्यादा होती है। साथ ही दोनों का वजन ज्यादा होता है। परंपरागत खेती की तुलना में दो से तीन गुना ज्यादा उपज होती है। अगर पूरे राज्य में एसआरई विधि से धान की खेती की जाए तो 80 प्रतिशत आबादी के लिए अन्न जुटेगा।

अनगढ़ा प्रखंड के रमेश कहते हैं कि एसआरआई विधि से खेती करना आसान है और उत्पादन में बढ़ोतरी भी हुई है। अगर हमें सरकार द्वारा बीज उपलब्ध करा दिए जाएं, तो हम अपने खेतों में धान ही नहीं बल्कि मोती उगाएंगे। अनगढ़ा के राजेश मुंडा कहते हैं कि हमें एसआरआई विधि ने खेती की नई तकनीक दी है। अब हमारे खेतों में उत्पादन बढ़ा है। जहां पहले खेतों में ज्यादा दिनों में कम फसल होती थी, वहां अब ज्यादा फसलें उगायी जा रही हैं। अनिता देवी कहती हैं कि थोड़ी खेती में ही हमें ज्यादा उत्पादन प्राप्त हुए हैं। अगर नई तकनीक की अपेक्षा पुरानी तकनीक से खेती की जाए, तो हमें कोई लाभ नहीं होता, लेकिन आज हम एक डिसमिल के खेत में 30–35 बोझा धान उत्पादन करते हैं।

नई तकनीक से बनी महुआ की किशमिश, बर्फी व अचार

झारखंड में बहुतायात रूप में महुआ का उत्पादन होता है। महुआ के वृक्ष झाड़ीदार व जंगलों में बहुतायात में पाए जाते हैं। ग्रामीण इसका भरपूर उपयोग करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से सटे क्षेत्रों में भी महुआ के पेड़ बहुतायत में पाए जाते हैं लेकिन कुछ दिन पहले केवल महुआ जानवरों को खिलाने में उपयोग किये जाते थे। लेकिन एसआरआई की नई तकनीक ने महुआ को एक नया रूप दिया है। महुआ से अब किशमिश, बर्फी और अचार जैसे खाद्य उत्पाद तैयार हो रहे हैं।

सेंटर ऑफ वर्ल्ड सोलिडेरेटी (सीडब्ल्यूएस) एवं सोसाइटी फॉर रूरल इंडस्ट्रीयलाइजेशन (एसआरआई) ने किसानों को इस नई तकनीक महुआ से बने उत्पाद के बारे में बताया। किसान के रांची जिले के ओरमांझी के किसानों को प्रशिक्षण दिया गया और अब महुआ से बर्फी बनाकर लोग आत्मनिर्भर हो रहे हैं। राज्य के पठारी क्षेत्रों की महिलाएं आज महुआ से उत्पाद का प्रशिक्षण ले रही हैं और लोग आत्मनिर्भर हो रहे हैं। महुआ उत्पाद जैसे महुआ बर्फी, महुआ किशमिश, चिकी, अनेक प्रकार के अचार, जैम आदि उत्पादों को बनाना सीखा और बनाया भी। उत्पाद के बनने के बाद ऐसे नजदीकी गांवों के बाजार की मांग और प्रतिक्रिया को जानना चाहा। आज कई महिलाएं महुआ उत्पाद की ब्रिकी से 4000 रुपये की कमायी तक कर रही हैं।

ओरमांझी की रहने वाली अनिता देवी ने प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद महुआ प्रोसेसिंग को रोजगार का रूप दिया। अनिता बताती हैं कि महुआ का इस्तेमाल सिर्फ स्थानीय शराब बनाने के लिए नहीं बल्कि पौष्टिक उत्पाद के रूप में भी कर सकते हैं जिससे कमायी के साथ–साथ समाज को एक नई दिशा भी मिलेगी। ट्रायबल क्षेत्र की महिलाएं महुआ से शराब बनाती हैं।

झारखण्ड स्थापना दिवस 2012 में अनिता देवी और उनके समूह द्वारा उपलब्ध कराए गए बाजार के माध्यम से अपने तैयार किए गए उत्पादों को धड़ल्ले से बेचा। लोगों ने महिलाओं के इस कदम को खूब सराहा और ऐसे पौष्टिक उत्पाद को प्रोत्साहित भी किया। ऐसी कहानी अनिता देवी की ही नहीं है जिन्होंने महुआ प्रोसेसिंग को लघु उद्योग के रूप में अपनाया और अपने रोजगार का साधन बनाया, हमारे पास ऐसे कई उदाहरण हैं जिन्होंने महुआ प्रोसेसिंग को अपने रोजगार के साथ जोड़ा है।

एसआरआई के सचिव अंजनी कुमार सहाय कहते हैं कि एसआरआई से कम समय में खेती की जाती है और उत्पादन ज्यादा होता है। कम बारिश में भी किसानों को लाभ होता है। आज झारखंड के कई जिलों में किसान एसआरआई विधि से खेती कर रहे हैं। पठारी क्षेत्रों में ज्यादातर किसान इस विधि का

उपयोग कर रहे हैं। पश्चिम व पूर्वी सिंहभूम, बोकारो व रांची के अनगढ़ा प्रखंड में ज्यादातर किसान आज इस विधि का उपयोग कर रहे हैं। राज्य के किसान ज्यादा से ज्यादा एसआरआई विधि का उपयोग कर ज्यादा उत्पादन करे, यही हमारा लक्ष्य भी है। झारखंड सरकार भी इस विधि के अमल व प्रचार–प्रसार में प्रयासरत है।

जंगली फल महुआ से भी किशमिश बनाने की तकनीक हमने ही निकाली है। आज महुआ, जो शराब बनाने का प्रतीक था, हम किशमिश बनवा कर बाजार में बेच रहे हैं। यह हमारे कृषि क्षेत्र की सबसे अच्छी तकनीकों में से एक है।

खेतों में डाले केंचुआ खाद

झारखण्ड की 38 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि में पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं के अभाव में सिर्फ 28 लाख हेक्टेयर भूमि में कृषि हो पाती है। राज्य की अधिकांश भूमि टॉड है, जो बागवानी कार्य के लिए उपयुक्त है। हमारा देश कृषि पर निर्भर है। अच्छी और उन्नत खेती के लिए यह आवश्यक है कि अच्छी खाद का इस्तेमाल हो। वर्तमान में किसान रसायनिक खादों का इस्तेमाल कर रहे है, जिससे न केवल फसल प्रभावित हो रही है, बल्कि जमीन भी अपनी महत्ता खोती जा रही है। रसायनिक खाद से लोगों के स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुंच रहा है।

स्वयंसेवी संस्थाओं और सरकार की संस्थाओं के प्रयास से केंचुआ खाद की महत्ता बढ़ी है। लोग अब केंचुआ खाद के बारे में जान पा रहे हैं। फलदार वृक्षों, फूल के पौधे, औषधीय पौधे, मसालों की खेती, सब्जी बीज उत्पादन, जैविक खेती आदि लोगों के आय का स्रोत बनते जा रहे हैं। झारखंड में राज्य बागवानी मिशन इसमें लगातार अपना सहयोग दे रहा है।

राज्य बागवानी मिशन ने बेहतर उत्पादन, भूमि संरक्षण, स्वास्थ्य आदि को ध्यान में रखते हुए केंचुए की खाद को प्राथमिकता दी है। सिर्फ इतना ही नहीं राज्य में और राज्य के बाहर इस खाद की आपूर्ति के लिए केंचुआ खाद का उत्पादन जोर–शोर से किया जा रहा है। राज्य बागवानी मिशन ने केंचुआ खाद के उत्पादन को अपनी योजना के अंतर्गत शामिल किया है जिससे किसानों को जहां आय का स्रोत और आर्थिक लाभ नजर आ रहा है वहीं भूमि संरक्षण एवं स्वास्थ्य भी बरकरार रहेगा।

केंचुआ खाद काफी लाभदायक है। इस खाद को भूमि में बिखेरने से तथा भूमि में इनकी सक्रियता से भूमि मुरमुरी एवं उपजाऊ बनती है जिससे पौधों की जड़ों के लिए उचित वातावरण बनता है। इससे उनका अच्छा विकास होता है। केंचुआ खाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि करती है तथा भूमि में जैविक क्रियाओं को निरन्तरता प्रदान करती है। केंचुआ खाद में आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर व संतुलित मात्रा में होते हैं। इस खाद के प्रयोग करने से खेत की मिट्टी मुरमुरी हो जाती है, जिससे उसमें पोषक तत्व व जल संरक्षण की मात्रा बढ़ जाती है और हवा का आवागमन भी मिट्टी में निरंतर बना रहता है। केंचुआ खाद को बर्बाद हो चुकी चीजों का इस्तेमाल करके बनाया जाता है।

केंचुआ खाद टिकाऊ खेती के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह रामबाण के रूप में कार्य करती है और सबसे महत्वपूर्ण यह कि केंचुआ खाद जैविक खेती की दिशा में एक नई पहल है। केंचुआ खाद का महत्व सिर्फ पर्यावरण एवं खेतों तक ही सीमित नहीं है। अगर केंचुआ खाद के उत्पादन में औद्योगिक स्तर पर आंका जाए तो इससे किसानों की जीविका चलती है। केंचुआ खाद को औद्योगिक स्तर पर अगर तैयार किया जाए, तो एक चक्र में उत्पादक को लगभग 10 हजार रुपये का लाभ मिल सकता है।

क्या है केंचुआ खाद

केंचुआ के इतिहास पर अगर हम नजर डालें, तो यह भूमि में अपना महत्वपूर्ण योगदान भूमि सुधारक के रूप में देता आ रहा है। इनकी क्रियाशीलता मिट्टी में अपने आप चलती रहती है। पहले की बात कही जाए तो केंचुए प्रायः भूमि में पाए जाते थे तथा बारिश के वक्त भूमि पर दिखते थे। लेकिन वर्तमान में आधुनिक खेती में इस्तेमाल किए जा रहे हैं। रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों ने केंचुए की उपस्थिति को कम कर दिया है। नतीजा यह है कि केंचुए अब जमीन में नहीं के बराबर पाए जाते है, जिससे मिट्टी अपनी उर्वराशक्ति खो रही है। केंचुआ मिट्टी में पाया जाने वाला सबसे प्रमुख जीव है जो अपने आहार के रूप में मिट्टी तथा कच्चे जीवांश को निगलकर अपनी पाचन नलिका से गुजारते है जिससे वह महीन कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाता है और अपने शरीर से बाहर छोटी–छोटी कास्टिंगस के रूप में निकालते हैं। इसी कम्पोस्ट को केंचुआ खाद या वर्मी कम्पोस्ट कहा जाता है।

केंचुआ के प्रयोग से व्यावहारिक–स्तर पर खेत पर ही कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है जिसके लिए लगभग 45 से 75 दिनों का वक्त लगता है। यह खाद बहुत ही प्रभावशाली होती है तथा इसमें पौधों के लिए सभी पोषक तत्व भरपूर मात्रा में मौजूद होते हैं तथा पौधे इनको तुरंत ग्रहण कर लेते हैं। पूरे विश्व में लगभग केंचुए की 4500 प्रजातियां पाई जाती हैं परन्तु कम्पोस्ट के लिए 2 प्रजातियां सबसे उपयोगी पाई गई हैं जिसे सामान्य भाषा में लाल केंचुआ और भूरा गुलाबी केंचुआ कहा जाता है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से केंचुआ खाद उत्पादकों को आर्थिक

लाभ पहुंचा सकती है। केंचुए द्वारा कचरे केकड़े कम्पोस्ट में परिवर्तित होने के साथ–साथ केंचुओं की संख्या पहले से कम से कम दो गुनी हो जाती है। इस प्रक्रिया को लगातार करने से पूरे वर्ष कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। केंचुआ खाद सिर्फ आर्थिक लाभ ही नहीं देता है, बल्कि यह एक उच्च पौष्टिक तत्व वाली खाद है, जिसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के अलावा सूक्ष्म पोषक तत्व भी उपलब्ध होते हैं जो जमीन को उपजाऊ बनाते हैं।

कैसे बनाए वर्मी कंपोस्ट

बिरसा कृषि विश्वविद्यालय व झारखंड राज्य बागवानी मिशन से मिली जानकारी के अनुसार केंचुए धूप सहन नहीं कर सकते इसलिए सबसे पहले 5 फुट चौड़ा व 20 फुट लंबा बांस या लकड़ी का छप्पर खड़ा करते हैं। नथा खपड़ा अथवा पुआल से छत बना दी जाती है। इसकी ऊंचाई इतनी होनी चाहिए कि आदमी आराम से पानी दे सकें। इस झोपड़ी के नीचे वर्मी कम्पोस्ट तैयार किया जाता है ताकि अधिक धूप एवं बरसात के पानी से बचाया जा सके। स्थान के चुनाव के समय यह ध्यान देना चाहिए कि वहां पर बरसात का पानी इकट्ठा न हो। इसके अलावा जैविक पदार्थ जैसे गोबर, कूड़ा–करकट, पौधों का अवशेष तथा घासफूस, हरी पत्ती आदि से पहले शीशा, पॉलिथीन, पत्थर आदि अगर हो तो चुनकर अलग कर लेना चाहिए। सब्जियों के अवशेष, कूड़ा–करकट आदि को गोबर के साथ मिलाने के बाद 10 से 15 दिन तक अलग जगह पर आंशिक विघटन के लिए छोड़ दिया जाता है। गोबर एवं अन्य पदार्थों का अनुपात बराबर होना चाहिए। आंशिक विघटन के बाद वर्मी कम्पोस्ट यूनिट में इसे प्रयोग किया जाता है। सबसे पहले शेड के नीचे जमीन को समतल बनाकर इसे भिगोकर सड़ने वाला पदार्थ रखा जाता है। इसके बाद पहली सतह, धीरे–धीरे सड़ने वाले पदार्थों जैसे नारियल के छिलके, केले के पत्ते या छोटे टुकड़ों में कटे बांस से तैयार किया जाता है। इस सतह की मोटाई लगभग 3'' से 4'' होना आवश्यक है। इस सतह को बेड कहा जाता है। कठिन समय में केंचुआ इसे घर के रूप में इस्तेमाल करता है। दूसरी सतह भी करीब 3'' से 4'' मोटी होती है जोकि बेडिंग पदार्थ के ऊपर बिछाई जाती है। इस सतह में मुख्यतः आधे सड़े हुए गोबर का इस्तेमाल किया जाता है ताकि सड़ने के समय पदार्थ में ज्यादा गर्मी पैदा न हो। अगर इस पदार्थ में नमी की कमी हो तो हर सतह में पानी का छिड़काव करना आवश्यक है।

दूसरी सतह के ऊपर केंचुओं को हल्के से रखा जाता है। एक वर्ग मीटर जगह के लिए 250 केंचुओं की जरूरत है। केंचुओं को छोड़ने के पश्चात् बहुत जल्दी ये दूसरी सतह के नीचे घुस जाते हैं क्योंकि ये अपने को बाहर में खुला रखना पसंद नहीं करते हैं। छोटे टुकड़ों में कटा हुआ हरा या सूखा जैविक पदार्थ एवं गोबर को आधे–आधे हिस्सों में मिलाकर आखिरी सतह में दिया जाता है। यह सतह तकरीबन 4'' से 5'' मोटी होती है। आखिरी सतह को पूरी क्यारी की लम्बाई के बराबर जूट के कपड़े से ढक दिया जाता है। पूरे ढेर को ढकना आवश्यक है। जूट का फटा हुआ बोरा इस काम में इस्तेमाल किया जा सकता है। बोरे के ऊपर नियमित रूप से पानी का छिड़काव आवश्यक है। नमी लगभग 60 प्रतिशत बनी रहनी चाहिए। जब केंचुआ खाद तैयार हो जाए, जो इसमें पानी का छिड़काव बंद कर देना चाहिए तथा उसे सूखने देना चाहिए। इसके ऊपर से आधे सड़े हुए गोबर की एक पतली परत देनी चाहिए। सारे केंचुए एक परत में आ जाते हैं। तत्पश्चात् इन केंचुओं को ऊपर की परत समेत इकट्ठा कर लेते हैं। मोटी छलनी से छानकर भी केंचुओं को अलग किया जा सकता है। ऊपर के दो स्तर केंचुआ खाद के रूप में इकट्ठा कर लेते हैं। बेड को सुरक्षित रखा जाता है तथा पुराने बेड के ऊपर दूसरी खेप की तैयारी पुनः पहले चरण से शुरू कर देनी चाहिए। इस खाद को छाया में सुखाकर इसकी नमी कम कर दी जाती है। इससे यह रहने योग्य हो जाता है। सुखने के पश्चात् खाद को बोरे में एक साल की अवधि तक के लिए रखा जा सकता है। केंचुआ खाद का इस्तेमाल करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि खेत में किसी तरह की रासायनिक खाद तथा किसी प्रकार की दवा का इस्तेमाल न हो।

व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है केंचुआ खाद

व्यावसायिक दृष्टिकोण से हम अगर परे हटते हैं तो इसे हम किस प्रकार इस्तेमाल करते हैं यह सवाल जेहन में आता है। केंचुआ खाद का इस्तेमाल करने के लिए खेत की अंतिम जुताई के समय 20 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर में केंचुआ खाद डालकर जुताई करते हैं। बीज बोने से पहले पंक्ति में इसे अच्छी तरह डालें अथवा बिचड़ा या पौधा लगाने के पूर्व खाद को अच्छी तरह डालना होता है। फिर मिट्टी चढ़ाने के समय भी इसे डाला जा सकता है। निकौनी गुड़ाई के साथ केंचुआ खाद पौधों की जड़ों में डालकर मिट्टी से ढक दी जाती है अथवा पौधों की रोपाई एवं बीजों की बुआई के समय केंचुआ खाद डालकर बुआई–रोपाई की जाती है। बेहतर परिणाम के लिए केंचुआ खाद का प्रयोग करने के बाद पुलाव, सूखी पत्ती आदि पलवार का उपयोग किया जाता है जिससे अत्यधिक उत्पादन संभव हो पाता है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई–मेल : bikashsingh5@gmail.com

Career Launcher News
www.careerlauncher.com/civils

CAREER LAUNCHER

सिविल सेवा अभ्यर्थियों

CL Civil Services Notice No. 2014-15
May 2014

CL से जुड़ें, IAS बनें

करियर जो राष्ट्र का निर्माण करता है

सामान्य अध्ययन की तैयारी

हमारा सामान्य अध्ययन कार्यक्रम, सामान्य अध्ययन के प्रारंभिक और प्रधान दोनों परीक्षाओं की तैयारी कराता है। 650+ घंटों की कक्षायें और व्यापक अध्ययन सामग्री के साथ-साथ हम छात्रों को विषय विशेषज्ञों के द्वारा तैयार सामान्य अध्ययन के प्रत्येक भाग का खण्डवार टेस्ट उपलब्ध कराते हैं।

CSAT की तैयारी

हमारा CSAT कार्यक्रम, छात्रों को सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा के लिए 250+ घंटों की कक्षाओं, व्यापक अध्ययन सामग्री और अखिल भारतीय टेस्ट सीरिज़ द्वारा प्रतियोगी श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया है।

सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक + प्रधान) परीक्षा 2015 के लिए बैच जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर और नवम्बर में प्रारम्भ होंगे।
CSAT – 2015 के लिए बैच प्रत्येक सप्ताह में प्रारंभ।

CL के 179# छात्र सिविल सेवा प्रधान लिखित परीक्षा 2013 में उत्तीर्ण हुए।
#परिणामों का परीक्षण जारी है

CL के 742* छात्र, सिविल सेवा प्रधान परीक्षा 2013 के लिए योग्य पाये गये।
*अंतिम परिणामों पर आधारित

CL | Civil Services Test Prep

www.careerlauncher.com/civils
/CLRocks

नये बैचों की जानकारी हेतु अपने निकटतम् CL सिविल केंद्र से संपर्क करें

मुखर्जी नगरः 204/216, द्वितीय तल, विराट भवन/एमटीएनएल बिल्डिंग, पोस्ट ऑफिस के सामने, फोन – 41415241/46
ओल्ड राजेन्द्र नगरः 18/1, प्रथम तल, अग्रवाल स्वीट कॉर्नर के सामने, फोन – 42375128/29
बेर सरायः 61बी, ओल्ड जे. एन. यू. कैम्पस के सामने, जवाहर बुक डिपो के पीछे, फोन – 26566616/17
साउथ कैम्पसः 283, प्रथम तल, वेकेंटेश्वरा कॉलेज के सामने, सत्या निकेतन, फोन – 24103121/39

अहमदाबादः 9879111881 | इलाहाबादः (0)9956130010 | बंगलुरूः 41505590 | भोपालः 4093447 | भुवनेश्वरः 2542322 | चंडीगढ़ः 4000666 | चेन्नईः 28154725
हैदराबादः 66254100 | इन्दौरः 4244300 | जयपुरः 4054623 | लखनऊः 4108009 | नागपुरः 6464666 | पटनाः 2678155 | पुणेः 32502168

KH-63/2014

कृषि विकास में सूचना प्रौद्योगिकी एवं ट्रांसजैनिक फसलों की भूमिका

सोनी कुमारी

हमारे देश में प्राकृतिक संसाधनों खासकर सिंचित भूमि की उपलब्धता को देखते हुए कृषि विकास सुनिश्चित करने की जरूरत है। खेती योग्य भूमि का लगातार छोटा होना, प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण और जलवायु परिवर्तन की उभरती चिंताओं के बीच कृषि उत्पादन बढ़ाना अपने आप में एक बड़ी चुनौती है तथा वैज्ञानिकों के सहयोग और किसानों की मेहनत से यह मुमकिन हो पा रहा है। सरकार की दूरदर्शी सोच, किसानों की कड़ी मेहनत और वैज्ञानिकों की ओर से मिल रहे कुशल मार्गदर्शन का नतीजा है कि भारतीय कृषि उत्पादन में लगातार बढ़ोतरी हो रही है।

कृषि उत्पादन को ध्यान में रखकर सरकार की ओर से किसानों के लिए कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय बागवानी मिशन के जरिए किसानों को परम्परागत खेती के साथ ही बागवानी के प्रति भी आकर्षित किया जा रहा है। इससे जहां उनके जीवनस्तर में सुधार हो रहा है वहीं खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ रहा है। हमेशा से और आज भी कृषि उत्पादन में बीजों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। शुद्ध एवं स्वस्थ प्रमाणित बीजों का उपयोग करने से जहां एक ओर अच्छी पैदावार मिली है वहीं दूसरी ओर समय एवं पैसों की बचत होती है। यही वजह है कि सरकार की ओर से बीजों की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान रखने पर जोर दिया जा रहा है। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन बढ़ने के साथ–साथ गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है।

खेती को बढ़ावा देने एवं पैदावार बढ़ाने के लिए भूमि संरक्षण की दिशा में सरकार की ओर से कई महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। केन्द्र सरकार की ओर से किसानों को उपज का उचित मूल्य दिलाने की दिशा में भी सराहनीय प्रयास किए गए हैं। सरकार के न्यूनतम समर्थन मूल्य से सीमांत एवं छोटे किसानों को काफी फायदा हुआ है।

आधुनिक खेती में बढ़ती उत्पादन लागत एवं जहरीले कीटनाशकों के चलते किसानों को जैविक खेती की ओर भी प्रेरित किया जा रहा है। जैविक खेती का मुख्य उद्देश्य कम से कम लागत मूल्य में अधिक उत्पादन लेना तथा जमीन का उपजाऊपन कायम रखकर

जहरमुक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना है। आर्गेनिक फूड के फायदों को देखते हुए आजकल इसका प्रचलन दिनोंदिन बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप फलों एवं सब्जियों की जैविक खेती का भविष्य भी उज्जवल दिख रहा है।

आज हम खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बन चुके हैं। कृषि मंत्रालय के आकलन में 2013–14 में चावल, गेहूँ, मक्का, तूर व कपास का उत्पादन रिकार्ड स्तर पर प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। इस वर्ष दालों व तिलहनों का उत्पादन भी अब तक के सर्वोच्च स्तर पर अनुमानित है। दूसरे अग्रिम आकलन में 2013–14 में चावल का कुल उत्पादन 106.19 मिलियन टन अनुमानित किया गया है, जोकि पूर्व वर्ष 2012–13 में 105.24 मिलियन टन था। गेहूँ का उत्पादन 2012–13 में 93.51 मिलियन टन रहा था, जो 2013–14 में 95.60 मिलियन टन अनुमानित किया गया है। संदर्भित वर्ष में 41.64 मिलियन टन के मोटे अनाजों के कुल उत्पादन में ज्वार का उत्पादन 5.53 मिलियन टन, बाजरा का 8.80 मिलियन टन तथा मक्का का उत्पादन 23.29 मिलियन टन अनुमानित है। दालों के कुल 19.77 मिलियन टन रिकॉर्ड उत्पादन में तूर का उत्पादन 3.34 मिलियन टन, चना का 9.79 मिलियन टन तथा उड़द का 1.59 मिलियन टन अनुमानित किया गया है।

देश में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए कुछ अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र मृदा परीक्षण, बीज परीक्षण, बेहतर सिंचाई सुविधाएं और संस्थागत ऋण सुविधाएं आदि हो सकते हैं। गुणवत्ता वाली मिट्टी और बीज जो महत्वपूर्ण निवेश हैं उनका बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसी के मद्देनजर गांव–गांव में नियुक्त किसान मित्रों एवं कृषि विभाग के कर्मचारियों द्वारा मिट्टी में कौन–सा बीज बोना चाहिए, मिट्टी में यदि किसी तत्व की कमी है तो उसे रासायनिक क्रियाओं तथा खादों के जरिए दूर करने की तकनीक बताई जा रही है। देश में उच्च गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता के लिए 64 हजार से अधिक बीज गांवों को तैयार किया गया, जिसमें 11265 लाख क्विंटल बीजों की पैदावार हुई है। गुणवत्ता के मामले में भी उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की गई हैं।

भारतीय किसान अपनी फसलों की सिंचाई के लिए आमतौर पर वर्षा पर निर्भर रहते हैं। मौसम क्या करवट लेगा, कोई नहीं जानता लेकिन हम अन्य क्षेत्रों में उपलब्ध जानकारी, सांख्यिकी और सेटेलाइट नक्शों का मौसम संबंधी भविष्यवाणी के लिए वैज्ञानिक प्राक्कलन करने हेतु उपयोग कर सकते हैं। इन भविष्यवाणियों से किसानों को सभी संभावित घटनाओं से पहले योजना तैयार करने और अपनी फसलों को होने वाले नुकसान को कम करने में सहायता मिल सकती है।

बीते दशक के दौरान भारतीय उद्योग जहां लगातार उत्साहवर्द्धक वृद्धि कर रहे थे, भारतीय कृषि की स्थिति यथावत नहीं रही। हर आने वाली सरकार ने अनेक उपाय किए किन्तु परिणाम संतोषजनक नहीं रहे। यह आश्चर्यजनक इसलिए भी कहा जाएगा क्योंकि वर्ष 2008 को छोड़कर इस पूरी अवधि में मानसून लगातार अनुकूल बना रहा और यह देश नियमित वर्षा वाली कुछ लंबी अवधियों में शुमार किए जाने लायक बना। इस अनुकूल आरम्भिक स्थिति के बावजूद कृषि क्षेत्र की विकासदर अल्प बनी रही। इस कृषि कथा में खेल बिगाड़ने वाली एक चीज तो सार्वजनिक निवेश का स्थिर बने रहना ही रही। सरकार पर अपने संसाधनों को अनेक प्रतिस्पर्धी मांगों के बीच विवेकसम्मत रूप से आवंटित करने का दबाव होता है।

सूचना प्रौद्योगिकी की बदौलत देश एवं देश के कृषि परिदृश्य में तेजी से बदलाव आ रहा है। लगभग एक दशक पूर्व तक देश में कृषि कार्य परम्परागत ज्ञान के आधार पर होता था। सूचनाओं का आदान–प्रदान मानवीय स्तर पर ही होने के कारण इसका आधार संकुचित था। पिछले एक दशक में कृषि क्षेत्र में सूचना संसाधनों के उपयोग में वृद्धि होने से उपज बढ़ाने, फसल को रोगमुक्त रखने, मिट्टी के स्तरोन्नयन, उन्नत बीजों के प्रयोग इत्यादि विषयों की जानकारी किसानों को सीधे मिलने लगी है। आज कृषक अपनी पसीने की कमाई से केवल दो समय का भोजन ही प्राप्त नहीं करना चाहता अपितु वह अपनी आवश्यकता से अधिक अन्न उत्पादन करना चाहता है, ताकि वह अपने परिवार की दैनिक आवश्यकताओं जैसेकि बच्चों की पढ़ाई, पौष्टिक भोजन आदि की आपूर्ति कर सके।

इसी दिशा में निजी संस्थाओं के प्रयास जैसे कि अनुबंध कृषि ने कृषि के बाजारीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले कुछ. वर्षों में देखा गया है कि कुछ नये विचारों ने परम्परागत प्रसार के तरीकों को बदल कर रख दिया है जिसमें कि सूचना प्रसार तकनीक एक मुख्य साधन बनकर उभरी है। इस तकनीक के माध्यम से सूचनाएं किसानों तक सटीक व बिना समय गंवाए पहुंचती हैं। इस सूचना तकनीक ने ग्रामीण लोगों तक सूचनाओं को आसानी से व कम लागत में पहुंचा दिया है। अभी तक किसानों व प्रसार कार्यकर्ताओं के मध्य अनुपात 1000:1 है। अर्थात् 1000 किसानों के ऊपर केवल एक प्रसार कार्यकर्ता उपलब्ध है, जोकि बहुत कम है। हालांकि ग्रामीण कृषि विकास कार्यकर्ता सूचनाओं को प्रसारित तो कर रहे हैं परन्तु बिना किसी जिम्मेदारी के एक बोझ समझकर। इन्हीं दो कारणों से किसानों की मदद एवं उन्हें त्वरित गति से सूचना पहुंचाने की जरूरत महसूस की गईं। सूचनाओं को

समय से एवं लक्षित लोगों तक पहुंचाने में आने वाली समस्याओं के कारण ही सूचना–संचार तकनीक का जन्म हुआ। यह सूचना संचार तकनीक का ही प्रभाव है जोकि हम सूचनाओं को जल्दी से जल्दी कम से कम लागत में लक्षित लोगों तक पहुंचा सकते हैं।

भारत में सूचना–संचार तकनीक के कई मॉडल उपलब्ध हैं, जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना के प्रसार का प्रभावशाली रूप से विस्तार हुआ है। किसान मोबाइल संदेश तकनीक भी उन्हीं में से एक है। किसान मोबाइल संदेश संचार का एकरेखीय मॉडल है जोकि चार मुख्य अवयवों से मिलकर बना है।

प्रेषक सूचना माध्यम प्राप्तकर्ता सन् 2008 में शुरू हुआ एक अनूठा कार्यक्रम है जोकि किसानों के बीच संबंध स्थापित करता है। किसान मूल रूप से भारतीय कृषि को जीवित बनाए रखने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। लघु सूचना सेवा कृषि को स्थायित्व देने वाले किसानों के बीच तकनीकी सूचनाओं को प्रसारित करने का बहुत ही कारगर कार्यक्रम है।

कृषि विज्ञान केन्द्र के विषय विशेषज्ञ प्रसार कार्यकर्ता एवं कृषक समुदाय मोबाइल फोन की लघु सूचना सेवा की विशेषता का उपयोग करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों तक प्रत्येक दिन सीमित समय में बहुत बड़े जनसमुदाय तक सूचना पहुंचाने का इतना सरल और कारगर कार्यक्रम कोई नहीं है। किसानों के खेतों पर लघु सूचना सेवा की उपयोगिता एवं समस्याओं को देखते हुए निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है –

- ग्रामीणों के मध्य सूचनाओं के पहुंचाने की गति की जानकारी।
- ग्रामीण समुदाय के मध्य आवश्यकतापरक तथा समय से सूचना पहुंचाना।
- सीधे सम्पर्क से सूचनाओं के आदान–प्रदान के द्वारा सूचनाओं संबंधी दूरी को कम करना।
- किसान मोबाइल एडवाइजरी सेवा के द्वारा तेजी से फीडबेक प्राप्त करना।
- कार्यक्रम के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करना।

किसान मोबाइल एडवाइजरी सेवा की मूल अवधारणा

किसान मोबाइल एडवाइजरी सेवा एकरेखीय संचार मॉडल पर आधारित है, जिसके अंतर्गत चार मुख्य अवयव होते हैं जैसेकि

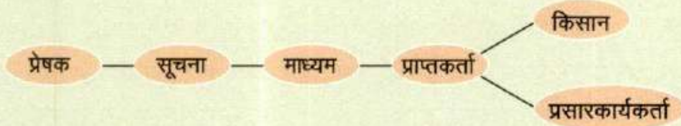

किसान मोबाइल एडवाइजरी सेवा के अंतर्गत उन सभी लोगों को शामिल किया जाता है जोकि कृषि के विकास से संबंधित हैं। जैसे कि –

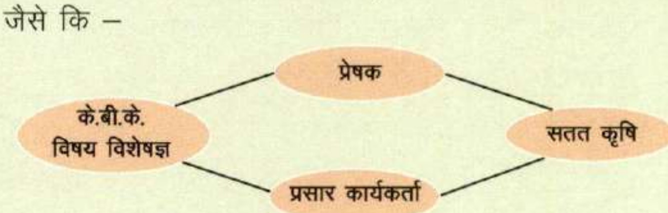

किसान मोबाइल एडवाइजरी सेवा को लागू करने से संबंधित मुख्य चरण

- किसान मोबाइल एडवाइजरी सेवा को शुरू करने से पूर्व जिला/प्रखण्ड तथा गांव का चयन करना।
- किसान मोबाइल संदेश का उपयोग करने वाले लोगों को चिन्हित करना।

- लघु सूचना सेवा प्रदान करने वाली संस्था/एजेंसी से किसानों के मोबाइल नम्बरों का डाटा प्राप्त करना।
- मोबाइल संदेश भेजने वाले की पहचान और एक मोबाइल नम्बर को रजिस्टर करना।
- लघु सूचना सेवा प्रदान करने वाली कम्पनी को आजीवन पंजीकरण के लिए पत्र लिखना।
- किसान मोबाइल संदेश प्राप्त करने वाले किसानों से सदस्यता प्राप्ति हेतु सदस्यता–पत्र भरवाना।
- कृषि से संबंधित सामान्य शब्दों का प्रयोग करने के संबंध में सूची तैयार करना।
- लघु सूचना सेवा प्रदान करने वाली कम्पनी को आवश्यक शुल्क प्रदान करना तथा संदेश भेजने वाले की पहचान व पासवर्ड प्राप्त करना।

निष्पादन

- किसान मोबाइल संदेश उपयोग करने वाले किसानों की सूची। माइक्रोसॉफ्ट एक्सेल में सी.एस.वी. एक्सटेंशन की फाइल तैयार करना जोकि इंटरनेट पर इस्तेमाल करने योग्य हो।
- बहुतायत की संख्या में लघु संदेश भेजने वाली कम्पनी द्वारा संदेश भेजने वाले की पहचान एवं पासवर्ड जांच करना।
- कम्पनी द्वारा प्रदत्त आई.डी. एवं पासवर्ड को सुरक्षा की दृष्टि से बदलना।
- उपरोक्त सभी कार्यों को चरणबद्ध तरीके से पूरा करने के पश्चात् कृषि विज्ञान केन्द्र जिला–स्तर पर सूचनाओं को प्रसारित करने के लिए तैयार हो जाता है।

दस्तावेजों का रखरखाव

- भेजे गए किसान मोबाइल संदेशों का रिकार्ड रखना।
- किसान मोबाइल संदेश के सदस्यों की सूची तैयार करना।
- तकनीकी जानकारी को फाइल में सुरक्षित रखना।
- चुने गए प्रखण्डों एवं गांवों के सदस्यों के नाम व पतों को सुरक्षित रखना।

मॉनीटरिंग एवं आकलन

- समय से किसान मोबाइल संदेश भेजना।
- सूचना की विषयवस्तु तैयार करना।
- सूचना के अर्थ को समझना।
- समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार सूचना।
- सूचना का अनुप्रयोग करना।
- उपयोगकर्ताओं से फील्ड विजिट, प्रशिक्षण अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क के दौरान फीडबैक लेना।
- तकनीक का असर देखना।

सूचना भेजने का समय निर्धारण

- सूचना भेजने का समय एवं दिन निर्धारित करना।
- दो अथवा तीन संदेश प्रत्येक सप्ताह प्रत्येक किसान को भेजना।
- 120 संदेश प्रत्येक किसान को प्रत्येक वर्ष भेजना।

संदेश की विषयवस्तु परफॉरमेंस सूचक

- संदेश की विषयवस्तु का पुनः परीक्षण।
- संदेश की विषयवस्तु में निहित अर्थ को समझना।
- समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार सूचना प्रेषित करना।
- संदेश की व्यावहारिकता को समझना।
- कृषि से संबंधित तकनीक अपनाने के स्तर में बदलाव होना।

सेवा प्रदान करने वाली कम्पनी की भूमिका एवं प्रदत्त सुविधाएं

- संदेश भेजने वाले सभी उपभोक्ताओं को समय–समय पर प्रशिक्षण प्रदान करना।
- आवश्यकता के अनुसार कृषि विज्ञान केन्द्र पर आकर समस्या का समाधान करना।
- कम से कम समय में समस्या का समाधान करना।
- किसानों के मोबाइल नम्बरों से संबंधित डाटा का प्रबंधन।
- किसान मोबाइल संदेश भेजने के लिए वेबसाइट पर अलग से स्थान प्रदान करना।
- दोतरफा संचारण हेतु कोड का एकीकरण करना ताकि साथ ही साथ फीडबैक भी प्राप्त किया जा सके।
- विभिन्न भाषाओं में संदेश भेजने की सुविधा जिससे कि हम अपने क्षेत्र की भाषा चुनकर संदेश भेज सकते हैं।
- 160 अक्षर तक संदेश भेजने की सुविधा।

भौगोलिक दृष्टि से देश में कृषि के क्षेत्र में विकास करना एक प्रमुख उद्देश्य है। इसी क्रम में आनुवांशिक परिवर्तित फसलें ट्रांसजैनिक कृषि प्रणाली की देन है। इसके अंतर्गत ट्रांसजैनिक पौधों की प्रजातियों के विकास में प्राकृतिक जीन के कृत्रिम उपायों द्वारा जिसे रिकंगीनेट डी.एन.ए. तकनीक कहते हैं, किसी दूसरे उत्तम नस्ल वाले पौधे के जीन का भाग मिला दिया जाता

है। साथ ही इसी तकनीक के द्वारा अनेक प्रकार के जेनेटिकली मोडीफायड आर्गेनिज्म बीजों का विकास किया गया। इस प्रकार की जीएम फसलों से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति होती है, जैसे

- गुणवत्ता एवं उत्पादकता में वृद्धि, प्रोटीन, खनिजों आदि की मात्रा में वृद्धि करके अधिक पौष्टिक आहार प्राप्त होता है।
- बीमारियों एवं कीटों के प्रति प्राकृतिक प्रतिरोध क्षमता का विकास एवं जलसंबंधी आवश्यकताओं में कमी।
- जी.एम. खाद्य पदार्थों का निर्माण जेनेटिकली मोडीफाइड डी.एन.ए. किसी एक पदार्थ से लेकर इसे प्रयोगशाला में परिष्कृत और संवर्धित किया जाता है एवं इसे लक्षित पदार्थ में मिलाकर उपयोगी खाद्य पदार्थ तैयार किया जाता है।

जी.एम. फसल से संभावनाएं

ट्रांसजैनिक फसलों एवं खाद्य पदार्थों के उत्पादन से कई प्रकार के लाभ हो सकते हैं, जो निम्न प्रकार हैं :–

- सर्वप्रथम अनेक विशेषज्ञों का मानना है कि इस तकनीक के माध्यम से दुष्कर एवं अनुपजाऊ प्रकृति के जलवायु प्रदेशों में भी फसलों का उत्पादन हो सकेगा। देश में अभी भी कितने ऐसे जिले हैं, जहाँ की भूमि बंजर है तथा वहां खेती संभव नहीं है। इस तकनीक के माध्यम से इन जगहों पर खेती की जाती है। इसके कारण भुखमरी और अकाल की समस्या का समाधान भी संभव हो सकेगा।
- जी.एम. खाद्य पदार्थों के समर्थकों का तर्क है कि विभिन्न प्रकार के विटामिनों और प्रोटीन से भरपूर जी.एम. फसलें कुपोषण को दूर करेंगी एवं खाद्य पदार्थों में नवीन पौष्टिकता का समावेश करेंगी। जैसेकि गोल्डन राइस 1 एवं 6 जो विटामिन 'ए' से भरपूर हैं, वे विटामिन 'ए' की व्यापक कमी को समाप्त कर सकेंगे एवं विटामिन 'ए' की कमी के कारण होने वाली अंधेपन की बीमारी आदि से मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।
- जी.एम. फसलें जैव रोगों एवं कीटों आदि के प्रति जबर्दस्त प्रतिरोध क्षमता रखती हैं। स्वाभाविक रूप से इन फसलों को कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे में कृत्रिम कीटनाशकों के प्रयोग करने से वातावरण स्वच्छ रहेगा एवं कीटनाशकों के कारण मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले घातक प्रभाव भी कम हो सकेंगे।
- लक्षित महामारी के कारण संपूर्ण फसल के खराब होने की समस्या के कारण कृषकों को जबर्दस्त हानि होती रही है। जी.एम. फसलों को महामारी का कोई खतरा नहीं है।
- जी.एम. फसलों एवं खाद्य पदार्थों के समर्थकों का तर्क है कि इनसे स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नुकसानदेह परिणामों की आशंका निर्मूल है, क्योंकि इन फसलों एवं खाद्य पदार्थों का विकास स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की सुरक्षा के समस्त उपायों को अपनाते हुए किया गया है। साथ ही इनका तर्क है कि विभिन्न फसलों एवं प्रजातियों के जीनों का सम्मिश्रण कोई नई बात नहीं है। ऐतिहासिक काल से ही प्राकृतिक रूप से फसलों की विभिन्न प्रजातियां अपने गुणों का सम्मिश्रण एक–दूसरे से करती रही हैं एवं इस प्रक्रिया के कारण अत्यन्त उपयोगी फसलों का विकास हुआ है।
- सबसे बढ़कर ट्रांसजैनिक कृषि से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि होगी। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या और खाद्य पदार्थों की कमी को देखते हुए जी.एम. खाद्य पदार्थों की उपलब्धता अति आवश्यक है।

जी.एम. फसलें

गोल्डन राइस : वैज्ञानिकों ने जीन परिवर्तन यानी आनुवांशिक परिवर्तन करके विटामिन'ए' की कमी को दूर करने वाले चावल का विकास किया है, इस चावल का नाम 'गोल्डन राइस' रखा गया है। इस चावल को तैयार करने में वैज्ञानिकों को 10 वर्ष तक अनुसंधान करना पड़ा। गोल्डन राइस को पैदा करने के लिए उसके पौधों पर तीनों जीनों का प्रत्यारोपण करना पड़ता है जिससे पौधा बीटा–कैरोटीन युक्त पीले रंग का चावल देता है। बीटा कैरोटीन ऐसा तत्व है जो शरीर में विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है।

बीटी कपास : यह आनुवांशिक परिवर्तित जीन वाली कपास की अत्यन्त उपजाऊ एवं रोगरहित किस्म है। भारत में इसकी व्यावसायिक कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित गेहूँ की वह किस्म है जो खून में शर्करा के साथ कॉलेस्ट्रॉल के स्तर का भी नियंत्रण करती है। यह डायबीटिज के रोगियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

क्रोमोलोम–11 : यह भारत द्वारा तैयार किए गए चावल के जिनोम की किस्म है। देश में धान एक महत्वपूर्ण फसल है। देश की ज्यादातर आबादी धान की खेती करती है। प्रत्येक व्यक्ति का मानना है कि चावल एक जलीय फसल है तथा स्थिर जल में अधिक वृद्धि करता है। धान का पौधा पानी के अंदर अपनी जड़ों में वायु कोष विकसित करने में काफी ऊर्जा व्यय करता है। धान की खेती के प्रबंधन हेतु निम्न उपाय किए जा सकते हैं –

खरपतरवार प्रबंधन : स्थिर जल की अनुपस्थिति में पौधे में अधिक घास उत्पन्न होती है। दो पौधों के बीच वीडर चलाकर घासपात को हटा देना चाहिए। पौधे के निकट की घास को हाथ से उखाड़ना चाहिए।

रोग प्रबंधन : कवकजनित झोंगा तथा भूरी चित्ती रोगों की रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम वैविस्टीन 50 का 0.5 प्रतिशत या ट्राइसायक्लाजोल 0.06 प्रतिशत का छिड़काव करें। फॉल्स स्मट रोग की रोकथाम के लिए बालियां निकलने से पूर्व प्रोपीकोनाजोल 0.1 प्रतिशत या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 का 0.3 प्रतिशत का दो बार 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। जीवाणुजनित रोगों के लिए खेत के पानी की निकासी करें। खेत में पोटाश की अतिरिक्त मात्रा 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से टॉपड्रेसिंग द्वारा डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बची किश्तों को विलम्ब से डालना चाहिए। सीथ ब्लाइट की रोकथाम के लिए हेक्साकोनाजोल 0.2 प्रतिशत या विलीडामाइनसिन का 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

सिंचाई एवं निराई–गुराई : बिचड़ों की रोपाई के 5 दिनों बाद खेत की हल्की सिंचाई करें। इसके बाद खेत में 5 सेंटी. की ऊंचाई तक पानी दानों में दूध भरने के समय तक बनाए रखें। खाली स्थानों पर एवं मृत बिचड़ों की जगह पर रोपाई के 5 से 7 दिनों के अंदर पुनः बिचड़ों की रोपाई करें। खरपतवारों की निराई–गुड़ाई रोपाई के तीन सप्ताह बाद, तथा दूसरी 6 सप्ताह बाद करें। लाइन में रोपी गई फसल में खाद डालने के बाद रोटरी या कोनों वीडर का प्रयोग करें। यूरिया की टॉपड्रेसिंग करने से पहले निराई–गुड़ाई अवश्य करें। इस पद्धति में खेत में पानी केवल मिट्टी को गीला करने एवं आर्द्रता बनाए रखने के लिए किया जाता है। बाद की सिंचाई तभी की जाए जब खेत में दरारें आ जाएं। खेत को कृमि रूप से सूखने देने और फिर पानी देने से मिट्टी में माइक्रोबियल क्रियाकलाप में वृद्धि होती है और पौध को आसानी से पोषक तत्व मिल जाते हैं।

कीट प्रबंधन : खेत में दानेदार कीटनाशी 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर या 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बिचड़ों की रोपाई के 3 सप्ताह बाद डाले। इसके तत्पश्चात् मोनोक्रोटोफास 36 ई0सी 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर या क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें ताकि फसल कीटों के आक्रमण से मुक्त रहे। एक हेक्टेयर में छिड़काव के लिए 500 लीटर जल की आवश्यकता पड़ती है। गंधी कीट के नियंत्रण के लिए इंडोसल्फान 4 प्रतिशत धूल या क्लीनालफास 1.5 प्रतिशत धूल की 25 किलोग्राम मात्रा का छिड़काव प्रति हेक्टेयर की दर से या मोनोक्रोटोफास 36 ईसी 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर का छिड़काव करें।

एसआरआई तकनीक के छह तरीके : धान की पौध में 8 से 12 दिन बाद दो छोटी पत्तियां दिखने लगे तभी रोपाई कर देनी चाहिए। रोपाई में अभिघात को कम करें। धान के छोटे पौधे को नर्सरी से बीज, मिट्टी और जड़सहित सावधानीपूर्वक उखाड़ कर कम गहराई पर उसकी रोपाई करनी चाहिए। धान का पौधा समूह के बजाय अकेले में अधिक बढ़ता है। इसलिए इसे वर्गाकार रूप में 25 गुना 25 सेंमी की दूरी पर रोपा जाना चाहिए। इससे अधिक जड़ वृद्धि की संभावना होती है।

निराई और हवा की व्यवस्था का ध्यान रखें। इसके लिए धान की फसल के लिए निराई और हवा अत्यन्त आवश्यक होती है। धान के फूटने या पुष्पित होने तक कम से कम दो निराई अवश्य करनी चाहिए, लेकिन 4 बार की निराई को उत्तम माना जाता है। पहली निराई रोपाई के 10 दिनों के बाद होनी चाहिए। घास की सफाई से धान के पौधों की जड़ों का अधिक विकास होता है और पौधे को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन भी प्राप्त हो जाती है। दो निराई के बाद प्रत्येक अतिरिक्त निराई से 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उत्पादन में वृद्धि संभव है।

मिट्टी को आर्द्र बनाए रखने के लिए नियमित जल प्रयोग आवश्यक है लेकिन कभी–कभी पानी को सूखने भी दिया जाना चाहिए ताकि पौधों की जड़ में आसानी से हवा की आवाजाही हो सके।

पी.एच.डी. शोधार्थी,इतिहास विभाग,ल.ना.मि. वि.वि., दरभंगा
ईमेल : sonikumari4284@gmail.com

कृषि की अभिनव तकनीक

डॉ. कल्पना द्विवेदी

भारत ही नहीं, समूची दुनिया की आबादी बढ़ी है। ऐसे में बढ़ी हुई आबादी को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की चुनौती भी बढ़ी है। ऐसे में जैव प्रौद्योगिकी ने कृषि की अभिनव तकनीक के रूप में खाद्यान्न की उपलब्धता को सुनिश्चित कराने का भरोसा जगाया है। वैसे तो जैव प्रौद्योगिकी के चमत्कारिक अनुप्रयोगों से आज कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है किन्तु कृषि क्षेत्र में इसने विशेष रूप से अपनी उपादेयता को साबित किया है। संक्षेप में, जीवों के जीनोम में पूर्णतया अथवा आंशिक परिवर्तन कर उसे बेहतर एवं उपयोगी बनाना ही जैव प्रौद्योगिकी है।

भारत ही नहीं, समूची दुनिया की आबादी बढ़ी है। ऐसे में बढ़ी हुई आबादी को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की चुनौती भी बढ़ी है। योग्य भूमि सीमित ही नहीं, सिकुड़ भी रही है जिससे बढ़ी हुई आबादी के लिए खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित कर पाना आसान नहीं है। ऐसे में जैव प्रौद्योगिकी ने कृषि की अभिनव तकनीक के रूप में खाद्यान्न की उपलब्धता को सुनिश्चित कराने का भरोसा जगाया है। सर्वप्रथम वर्ष 1917 में हंगरी के अभियंता कार्ल इर्के द्वारा जैव प्रौद्योगिकी शब्द का इस्तेमाल किया गया था। मानव स्वास्थ्य से लेकर अर्थव्यवस्था तक में जैव प्रौद्योगिकी का समान रूप से दखल है। कृषि का क्षेत्र भी इससे परे नहीं है। कम समय एवं लागत में बढ़ी उत्पादकता जैव प्रौद्योगिकी का लक्ष्य है। जीन अभियांत्रिकी (जेनेटिक इंजीनियरिंग) तथा ऊतक संवर्द्धन जैसी कुछ अचूक विधियों का उपयोग इसकी विशेषता है। अस्सी के शुरुआती वर्षों में जैव प्रौद्योगिकी ऐसी जादुई छड़ी बनकर आई, जिसने कृषि में एक नए युग की शुरुआत की।

जैव प्रौद्योगिकी का सर्वाधिक उपयोग अभियांत्रिकी फसलों के विकास में हुआ है। ये वे फसले हैं जिनके जीनोम को जीन अभियांत्रिकी के द्वारा कुछ इस तरह से परिवर्तित कर दिया जाता है कि वे कुछ विशेष नुकसानदायक कारकों के लिए प्रभाव शून्य हो जाती है। फलस्वरूप बिना किसी विशेष रखरखाव एवं लागत के बेहतर तथा अधिक उत्पाद प्राप्त होता है। जैव प्रौद्योगिकी ने कृषि के क्षेत्र में लाभदायक स्थितियां निर्मित की। कृषि क्षेत्र को जैव प्रौद्योगिकी ने नए आयाम देने का महत्वपूर्ण काम किया है।

पराजीनी (ट्रांसजैनिक) फसलें

प्रकृति में अनेक ऐसे पादप हैं जिन पर संक्रमण एवं रसायनों आदि का असर न के बराबर होता है। परन्तु वे आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी होते हैं। वहीं दूसरी तरफ वे फसलें जिनसे दैनिक जीवन में उपयोग होने वाले तमाम उत्पाद प्राप्त होते हैं, पर संक्रमण इतनी तेजी से होता है कि उत्पादकता शून्य तक हो जाती है।

जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा वे जींस जोकि अनुपयोगी पौधों को संक्रमणरोधी बनाते हैं, को उपयोगी पौधों के जीनोम में प्रत्यारोपित कर देते हैं जिससे यही नया पौधा एक तरफ तो अपने पूर्वज की भांति संक्रमण प्रतिरोधी होता है तो दूसरे पूर्वज की तरह उपयोगी उत्पाद देने वाला।

चूंकि इसमें एक पौधा, दूसरे पौधे के जींस को धारण करता है। अतः इस नए उत्परिवर्तित पौधे को पराजीनी (ट्रांसजैनिक) पौधा भी कहते हैं। पूरे विश्व में पराजीनी फसलों की कृषि का प्रचलन तेजी से बढ़ा है, जिनमें कुछ प्रमुख हैं:

खरपतवारनाशक प्रभाव शून्य पौधे

फसलों के बीच में उगने वाले अनुपयोगी पौधों (खरपतवारों) को नष्ट करने के लिए खरपतवारनाशकों (हर्बीसाइड्स) का प्रयोग होता है। परन्तु अक्सर ये रसायन खरपतवारों के साथ–साथ फसलों को भी नुकसान पहुंचाते हैं। जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा विकसित पराजीनी फसलों पर इन रसायनों का कोई असर नहीं होता है जिससे केवल खरपतवार ही नष्ट हो पाते हैं, फसल नहीं। "ग्लाइफोसेट" (एक हर्बिसाइड) प्रभाव–शून्य पौधे आज सम्पूर्ण विश्व में सफलता से उगाये जा रहे हैं।

कीट संक्रमण मुक्त पौधे

कीट–पतंगे फसलों के सबसे नुकसानकारी कारक हैं। ऐसा अनुमानित है कि हमारे देश की कृषि का लगभग 1/3 भाग कीटों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा आज ऐसी फसलों को विकसित कर लिया गया है, जिन पर कीट–पतंगों का कोई प्रभाव नहीं होता है।

विषाणुमुक्त पौधे

जैव प्रौद्योगिकी का एक और महत्वपूर्ण अनुप्रयोग ऐसे पौधे विकसित करने में है, जिस पर विषाणु संक्रमण का प्रभाव नहीं होता है। ये ऐसे पौधे हैं, जिनके जीनोम में विषाणु के जींस डाल दिये जाते हैं। ये जींस प्रोटीन उत्पन्न करते हैं। विषाणु की संक्रमणमुक्त प्रजातियां हाल ही में व्यावसायिक उपयोग के लिए तैयार की गई हैं।

बी.टी. फसलें

आज की सर्वाधिक चर्चित ये फसलें, जैव प्रौद्योगिकी का वरदान हैं। इन पर कीट–पतंगों का कोई असर नहीं होता है। इन पौधों के जीनोम में "बैसिलस थूरिनजेसिस (बी.टी.)" नामक जीवाणु के जींस प्रत्यारोपित कर दिए जाते हैं। क्योंकि ये पौधे बी.टी. जीवाणु के जींस धारण किए रहते हैं, अतः इन्हें बी.टी. पौधे भी कहते हैं। यह बी.टी. जींस क्रिस्टल प्रोटीन का निर्माण करता है जोकि अनेक प्रकार की फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों के लिए जहरीला होता है। जैसे ही कोई कीट इन पौधों को खाता है वह प्रोटीन उसके गले में अवशोषित हो जाता है। अवशोषित होते ही यह वहां की कोशिकाओं को तेजी से नष्ट करना शुरू कर देता है जिससे थोड़ी ही देर में कीट की तड़प कर मृत्यु हो जाती है। शुरुआत में यह बी.टी. जींस कपास के पौधे में प्रत्योरापित किया गया था। इसकी सफलता को देखकर आज इसे अनेकानेक पौधों में प्रत्यारोपित कर कीट संक्रमणमुक्त पौधों को विकसित किया जा चुका है। बी.टी. सोयाबीन एवं बी. टी. मक्का इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

पोषकता

कृषि की पोषकता बढ़ाने में भी जैव प्रौद्योगिकी का योगदान कम नहीं है। आधुनिक युग में भोजन की पोषकता, बाह्य स्वरूप एवं स्वाद के प्रति लोगों का रुझान बढ़ा है। जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा विकसित पराजीनी सोयाबीन के पौधों से प्राप्त सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा मूल पौधे से उत्पन्न सोयाबीन से 80 प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार पराजीनी आलू एवं दालें जिनमें माण्ड एवं एमिनो एसिड की मात्रा अपेक्षा से अधिक है, का उपयोग बखूबी हो रहा है। जीन–अभियांत्रिकी से निर्मित चावल में बीटा कैरोटीन उत्पन्न करने की क्षमता है। बीटा कैरोटीन से विटामिन 'ए' का निर्माण होता है, जोकि रतौंधी एवं आंख की अन्य बीमारियों को रोकने में सहायक है।

खाद्य संवर्द्धन

कृषि द्वारा उत्पन्न खाद्य पदार्थों के संवर्द्धन में जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग हुआ है। प्राचीनकाल में पनीर उद्योग में बछड़े के "जावन" का प्रयोग होता था परन्तु अशुद्धता, अत्यधिक लागत

एवं कम उत्पादकता उद्योग को प्रभावित करती थी। सन् 1990 में 'काइमेसिन' नामक एन्जाइम, जिसे जीन अभियांत्रिकी द्वारा एक जीवाणु से प्राप्त किया गया, ने तो पनीर उद्योग में क्रान्ति ही ला दी। आज पूरे विश्व में पनीर उद्योग मूलतः इसी एन्जाइम पर टिका हुआ है।

खाद्य उद्योग का लगभग एक तिहाई हिस्सा किण्वन पर आधारित है। यीस्ट (खमीर–सैकरोमाइसिटिज सेरेविसी) तथा अन्य सूक्ष्मजीव इस किण्वन के लिए उत्तरदायी हैं। इन्हीं सूक्ष्मजीवों को जीनोम में परिवर्तन कर, उन्नत एवं सुधरी हुई प्रजातियां तैयार करने में जैव प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यीस्ट की जीन अभियांत्रिकी में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यीस्ट की जीन अभियांत्रिकी प्रजातियों का उपयोग आज दूध के किण्वन से लेकर ब्रेड बनाने तक किया जा रहा है।

सूक्ष्म रोपण (माइक्रोप्रोपेगेशन)

कृषि में आज ऐसे उपयोगी पौधे हैं जो तेजी से विलुप्त हो रहे हैं। इसके कई कारण हैं–एक तो पौधे से बीज बनने तक में कई वर्ष तक लग जाते हैं। दूसरे, बीजों से सीमित मात्रा में पौधे उगाये जा सकते हैं। ऊतक संवर्द्धन विधि द्वारा पौधों की संख्या में अल्पसमय में संवर्द्धन कर, प्रत्येक कोशिका से नये पौधे विकसित कर लिए जाते हैं।

वातावरणीय लाभ

फसलों को संक्रमण से बचाने के लिए रसायनों का प्रयोग खूब होता है। ये रसायन न केवल मृदा को दूषित करते हैं, वरन् भूमिगत जल को भी दूषित करते हैं। जैव प्रौद्योगिकी द्वारा खरपतवारनाशक संक्रमणमुक्त पौधों के विकसित कर लिए जाने से इन रसायनों के उपयोग का प्रचलन कम हुआ है जिसमें परोक्ष रूप से वातावरण प्रदूषण को कम करने में मदद मिली है।

अन्य अभियांत्रिक उत्पाद

पादप आधारित टीका बनाने में जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग आजकल चलन में है। हेपेटाइटिस बी, दांत की सड़न, डायरिया आदि के पादप आधारित टीके जैव प्रौद्योगिकी के उपहार हैं।

"हाई फ्रुक्टोज कार्न सिरप" (HFCS), ऐसा मीठा पदार्थ है जिसे इन दिनों ठण्डे पेय बनाने में उपयोग किया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पन्न किए गए एन्जाइम की सहायता से प्राप्त यह मीठा पदार्थ, चीनी से सस्ता एवं स्वास्थ्य के लिए कम नुकसानदेह है।

जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा टमाटर की ऐसी प्रजातियां विकसित की गई हैं जिनमें पानी की मात्रा कम तथा पकने का समय अपेक्षाकृत अधिक होता है। इससे इसके भण्डारण एवं आयात–निर्यात में काफी सुविधा हुई है। जीन–अभियंत्रित सेब की महक तो बरबस उपभोक्ताओं को आकर्षित करती है।

मृदा में ऐसे सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं जो पौधों को अनेक पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। इन सूक्ष्म जीवों को जैव उर्वरक कहा जाता है। अनेक जैव उर्वरक अनेक पोषक तत्व तैयार करते हैं। परन्तु वायुमण्डल से वायवीय नाइट्रोजन को अवशोषित कर उसे पौधों के उपयोग लायक बनाना इनका मुख्य कार्य है, क्योंकि पौधे सीधे वायुमण्डल से नाइट्रोजन अवशोषित नहीं कर सकते हैं। जैव प्रौद्योगिकी की मदद से आज अनेक प्रकार के और बढ़ी हुई क्रियाशीलता वाले जैव उर्वरकों का निर्माण कर लिया गया है। राइजोवियम, एजोला, एजेटोवैक्टर ऐसे ही जैव उर्वरक हैं।

भविष्य की सम्भावनाएं

कृषि के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी का दोहन अभी बाकी है। वैज्ञानिक फसलों की अनेकानेक प्रजातियों के विकास में लगे हैं। ऐसी फसलें जिन पर वातावरणीय दबाव का कोई असर न हो, न तो ताप का, न तो सूखे का और न ही बाढ़ का। कोई फसल किसी क्षेत्र एवं मौसम विशेष की नहीं रह जाएगी, कोई भी फसल कहीं भी किसी भी मौसम में उगायी जा सकेगी। जाहिर है कि इन बातों का भरपूर लाभ कृषि जगत को मिलेगा ही। उत्पाद तो बढ़ेगा ही, कृषकों की निर्भरता मौसम पर नहीं रहेगी। तब सूखा या बाढ़ का प्रकोप उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर पाएगा। भारत में भी जैव प्रौद्योगिकी के महत्व को समझा जा चुका है। वर्ष 1986 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा अलग जैव प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना की जा चुकी है। इसे भविष्य की खाद्य सुरक्षा से जोड़कर देखा जा रहा है।

(लेखिका सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र) के पद पर कार्यरत एवं गैर–सरकारी संगठन अवेकेनिंग सोसाइटी, भारत की वरिष्ठ सदस्या हैं।)
ई–मेल : drkalpanadevivedi@gmail.com

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता
विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
सार्क देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

आधुनिक फार्म मशीनरी से खेती

मधुरानी

जिस तरह फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीक, उन्नतशील प्रजातियां और फसल संरक्षण आवश्यक है, ठीक उसी तरह खेती में आधुनिकतम कृषि यन्त्रों का प्रयोग भी अति महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत लेख में कुछ नवीनतम कृषि यन्त्रों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई है जिसका प्रयोग कर किसान भाई अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।

लेजर लैंड लैवलर

खेती में मशीनीकरण की वजह से कृषि भूमि की समतलता बिगड़ती ही जा रही है। ट्रैक्टर व भारी–भरकम मशीनों की खेती में मेड़ें सुरक्षित नहीं रही जिससे वर्षा जल का अधिकांश भाग बहकर नष्ट हो जाता है। साथ ही फसलों को दिए गए पोषक तत्वों का बड़ा हिस्सा भी वर्षा जल के साथ बहकर नष्ट हो जाता है। खेतों की बिगड़ती समतलता के कारण फसलों को दिए गए सिंचाई जल व पोषक तत्वों का सम्पूर्ण खेत में वितरण समान रूप से नहीं हो पाता है। अधिकांश किसान भाई खेतों की समतलता के महत्व को नजरअंदाज कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप मृदा उर्वरता व उत्पादकता सम्पूर्ण खेत में एक समान नहीं रहती है। अन्ततः फसल की औसत पैदावार में गिरावट आ जाती है। कभी–कभी एक ही तरह के कृषि यंत्रों एवं एक ही गहराई पर बार–बार जुताई करने के कारण अधोभूमि में हल तल के नीचे कठोर परतों का निर्माण हो जाता है जिसके कारण मृदा में वायु और नमी के आवागमन में बाधा पहुंचती है। साथ ही पौधों की जड़ों का विकास भी ठीक तरह से नहीं हो पाता है।

दूसरी हरितक्रान्ति बेहतर भूमि व जल प्रबंधन से आएगी। भूमि प्रबंधन का आधार खेतों की समतलता है। किसान भाइयों ने खेतों की समतलता के महत्व को समझा और खेतों को समतल करने की कई पारम्परिक विधियों को अपनाया जिससे कुछ लाभ प्राप्त हुए। परन्तु इन पारम्परिक विधियों से खेत पूर्णतया समतल नहीं हो पाता है। जिससे खेतों में सिंचाई जल, उर्वरक व अन्य कृषि रसायनों का असमान वितरण होता है और अन्ततः खेतों में खड़ी फसलों को हानि पहुंचती है। आधुनिक कृषि यंत्र लेजर लेवलर के उपयोग से खेत को पूर्णतया समतल किया जा सकता है। पूर्ण समतल खेत की सिंचाई में पानी कम लगता है क्योंकि खेत समतल होने के कारण जल्दी ही सम्पूर्ण सतह पर फैल जाता है। लेजर लैंड लैवलर चार उपकरणों से मिलकर बना होता है। जिसके तीन उपकरण कन्ट्रोल बॉक्स, लेजर ग्राही और मांजा एक ट्रैक्टर में लगे होते हैं तथा लेसर ट्रांसमीटर खेत के बाहर तिपाई पर रखा जाता है। यह लेसर ट्रांसमीटर खेत के समांतर लेजर तरंगें अपने चारों ओर भेजता है। जिन्हें मांझे पर लगा लेजर ग्राही पकड़ लेता है और उन्हें कन्ट्रोल बाक्स को भेजता है। ट्रैक्टर ड्राइवर की सीट की बगल में लगा हुआ यह कन्ट्रोल बॉक्स मांझे को आवश्यकतानुसार ऊपर नीचे करता रहता है जिससे खेत में चलता हुआ ट्रैक्टर खेत को पूर्ण समतल कर देता है। इसका अनुमानित मूल्य 3.5 से चार लाख रुपये है। लेजर लेवलर की अधिक जानकारी हेतु स्पेक्ट्रा प्रीसिजन लेजर प्राईवेट लिमिटेड, ई–4, द्वितीय तल, बाली नगर, नई दिल्ली–110015, फोन–011–25108991, 65905835 व विभिन्न राज्यों में

स्थित कृषि विश्वविद्यालयों के इंजीनियरिंग संभागों से सम्पर्क किया जा सकता है।

लेजर लैंड लेवलर के प्रयोग के लाभ

लेजर लैंड लेवलर के प्रयोग से लगभग 25–35 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है क्योंकि जल्दी ही पानी सम्पूर्ण खेत में फैल जाता है। खेतों का आकार बढ़ाया जा सकता है जिससे मेड़ों में बेकार जाने वाली 3–5 प्रतिशत भूमि कृषि में उपयोग की जाती है। फसलों की अधिक उत्पादकता प्राप्त होती है क्योंकि सभी पौधों को खाद, उर्वरक, सिंचाई जल का वितरण समान रूप से होता है। इस तकनीक से खेतों की सिंचाई करने में समय, ईंधन व ऊर्जा की बचत होती है। इस तकनीक का प्रयोग करने से खेतों में खरपतवारों का कम जमाव होता है क्योंकि खेत समतल होने से किसी भी हिस्से में आवश्यकता से अधिक नमी नहीं रहती है। इसको आसानी से व सुगमतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थानों पर ले जाया जा सकता है। लेजर लैंड लेवलर तकनीक किसानों के आर्थिक उत्थान में बहुत ही उपयोगी है। अतः इसे किसानों में और अधिक लोकप्रिय बनाने की जरूरत है।

रोटावैटर

फसलों की बुवाई के लिए दो–तीन बार हल से जुताई, फिर डिस्क हैरो द्वारा जुताई तथा अन्त में खेत को समतल करने के लिए पटेला चलाया जाता है। इन सबके स्थान पर खेत तैयार करने के लिए रोटावैटर का प्रयोग किया जा सकता है। यह एक अति उन्नत किस्म का जुताई यन्त्र है। रोटावैटर को ट्रैक्टर पी. टी.ओ. द्वारा शक्ति दी जाती है। इसके रोटर की गति 250 से 300 चक्कर प्रति मिनट तक होती है जबकि ट्रैक्टर पी.टी.ओ. की गति 540 चक्कर प्रति मिनट होती है। इसका वजन लगभग 350–400 कि.ग्रा. है। इस यन्त्र की चौड़ाई 12–15 मीटर है। रोटावैटर के फाले 'एल' टाईप के होते हैं और एक के बाद एक विपरीत दिशा में धुरी पर लगे होते हैं। यह मशीन 1.25, 1.55, 1.65 व 1.85 मीटर चौड़ाई में उपलब्ध है। इसका आकार मशीन द्वारा कटी भूमि की चौड़ाई से निर्धारित होता है। एक हेक्टेयर खेत की जुताई हेतु लगभग 3.6 घंटे का समय लगता है एवं खेत तैयार करने की लागत लगभग 600 रुपये प्रति हेक्टेयर आती है। यह मशीन बड़े–बड़े ठेलों को तोड़ने के अलावा खरपतवारों को भी जड़ से उखाड़ने का काम करती है। यह मशीन फसल के डंठलों व अवशेषों को खाद में परिवर्तित करने में मदद करती है। यह मशीन मिट्टी को एक ही बार में भुरभुरा तथा बुवाई हेतु उपयुक्त बना देती है। इसका प्रयोग पैडलिंग के लिए भी किया जा सकता है। एक बार पैडलिंग करने से खेत धान की रोपाई के लिए तैयार हो जाता है। इसकी अनुमानित कीमत 45,000 से 60,000 रुपये है।

रोटावैटर की मुख्य विशेषताएं

- रोटावैटर प्राथमिक और द्वितीय जुताई दोनों एक ही बार में करता है।
- यह एक बार डिस्क–हैरो तथा दो बार कल्टीवेटर के बराबर की जुताई एक ही बार में करता है।
- इसके द्वारा धान की रोपाई हेतु पैडलिंग भी की जा सकती है।
- इस मशीन से 50 से 60 प्रतिशत समय और 40 से 60 प्रतिशत ऊर्जा की बचत होती है।
- मिट्टी के बड़े–बड़े ठेलों को काटकर एक ही बार में भुरभुरा बना देता है।
- इस यन्त्र से खेत की तैयारी करने में लगभग 40–50 प्रतिशत सिंचाई जल की भी बचत होती है।
- खरपतवारों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देता है।

जीरो टिलेज ड्रिल

जीरो टिलेज तकनीक का खेती में लागत कम करने, फसलों की बुवाई समय पर करने तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक खेती में संरक्षित टिलेज पर जोर दिया जा रहा है जिसमें फसल अवशेषों का अधिकांश भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है जिससे न केवल फसल उत्पादकता में सुधार होता है बल्कि धान–गेहूं, मक्का–गेहूं व कपास–गेहूं फसल प्रणालियों में निवेश उपयोग दक्षता भी बढ़ती है। जीरो टिलेज टिकाऊ खेती की ऐसी पद्धति है जिसमें बिना खेत की जुताई किए ही अग्रवर्ती फसल की बुवाई पूर्ववर्ती फसल के अवशेषों में एक विशेष मशीन जीरो टिलेज ड्रिल द्वारा की

जाती है। साधारणतया धान, मक्का, कपास व अरहर की पछेती किस्मों की कटाई के उपरान्त खेत में गेहूं की फसल के लिए तैयारी करने का समय नहीं बचता और किसान के पास खेत को खाली छोड़ने के अलावा कोई अन्य उपाय नहीं रहता। जीरो टिलेज ड्रिल ने किसानों की इस समस्या का समाधान कर दिया है। इस मशीन द्वारा पूर्ववर्ती फसलों की कटाई करने के उपरान्त गेहूं की बुवाई बिना जुताई किए आसानी से की जा सकती है। इसमें बीज और उर्वरक बाक्स तथा बीज नापने के लिए फ्लूटेड रोलर लगाए गए हैं। उर्वरक डालने के लिए खांचेदार ऊर्ध्वाधर रोलर्स लगाए गए हैं। इस यन्त्र में मिट्टी में संकरे छिद्र करने हेतु पलटने वाले शॉवल प्रकार के कूड ओपनर्स के स्थान पर उल्टे प्रकार के कूड ओपनर्स स्थापित किए गए हैं जिससे मिट्टी को कम से कम खोदकर उसमें बीज और उर्वरक डाले जा सकते हैं। यह मशीन साधारण बुवाई मशीन की तरह ही कार्य करती है। लेकिन इसके शॉवल चाकू की तरह नुकीले होते हैं जो मिट्टी में पतली कूड बनाते हैं जिनमें बीज बिना कोई कठिनाई के उचित गहराई पर पहुंच जाता है। धान के पश्चात गेहूं की सीधी बुवाई के लिए जीरो टिलेज ड्रिल का प्रयोग लाभदायक पाया गया है क्योंकि पारम्परिक बुवाई की अपेक्षा इसमें 50 प्रतिशत समय की बचत तथा 40 प्रतिशत बुवाई की लागत में बचत होती है। साथ ही इसमें सिंचाई जल की बचत होती है। जीरो टिलेज ड्रिल के प्रयोग से 70 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से डीजल की बचत होती है। जहां इस तकनीक के प्रयोग से एक ओर गेहूं की उत्पादन लागत में कमी आती है तो वहीं दूसरी तरफ यह पर्यावरण हितैषी भी है। अतः इस तकनीक को किसानों में और अधिक लोकप्रिय बनाने की जरूरत है। जीरो टिलेज ड्रिल का मूल्य मशीन के आकार के अनुसार 30,000 से 2,50,000 रुपये है।

जीरो टिल ड्रिल की प्रमुख विशेषताएं

- जीरो टिल ड्रिल के प्रयोग से 75 से 85 प्रतिशत ईंधन, ऊर्जा एवं समय की बचत होती है।
- फेलेरिस माइनर अर्थात गुल्ली डंडा खरपतवार का कम जमाव होता है।
- देरी की अवस्था में बुवाई समय पर की जा सकती है।
- इस मशीन द्वारा 1.5 हेक्टेयर प्रति घंटा बुवाई की जा सकती है।
- 2500 से 3000 रुपये प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत तैयार की लागत में बचत होती है।

सावधानियां व सुझाव

जीरो टिल ड्रिल से बुवाई करते समय किसान भाई पारम्परिक विधि की अपेक्षा अधिक नमी पर बुवाई करें। पूर्ववर्ती फसलों के डंठल 20–30 से.मी. से अधिक बड़े नहीं होने चाहिए। जहां तक हो सके बुवाई धान की दो लाइनों के मध्य में ही करें जिससे जमाव अच्छा होता है।

बेड प्लान्टर

यह यंत्र मेड़ों पर गेहूं की बुवाई करने के लिए विकसित किया गया है। यह यंत्र सिंचित क्षेत्रों के लिए धान, सोयाबीन, कपास व मक्का आदि के बाद गेहूं की बुवाई हेतु उपयुक्त है। उत्तर–पश्चिम भारत में प्रचलित फर्टी सीड ड्रिल द्वारा समतल भूमि में बुवाई करने की अपेक्षा इस विधि द्वारा बुवाई करने पर उपज में 5–10 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है तथा लगभग 25–30 प्रतिशत बीज, सिंचाई जल व उर्वरकों की कम खपत होती है। फसल के गिरने की भी कम सम्भावना रहती है। यह यंत्र अच्छी जुती हुई भूमि पर एक बार में ही मेड़ें बनाकर उन पर बीज की बुवाई और मेड़ों को सही आकार में रखने का कार्य करता है। सामान्यतः यह दो मेड़ों पर छः लाइनों में बुवाई करता है। उभरी हुई क्यारियों की चौड़ाई को 65 से 70 सें.मी. के बीच समायोजित किया जा सकता है। यह ट्रैक्टरचालित यन्त्र है, इसको 35–45 हार्स पावर के ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है। इसकी कार्यक्षमता 0.2 हेक्टेयर प्रति घंटा है। इस यंत्र में उभरी मेड़ बनाने के लिए रिजर लगे होते हैं। बीज को नियमित तथा निर्धारित मात्रा में गिराने के लिए फ्लूटेड रोलर लगे होते हैं। खाद को कप के आकार वाले रोटर द्वारा गिराया जाता है। मेड़ों को समतल तथा आकार देने के लिए एक बड़ा शेपर यंत्र के पीछे लगा होता है। इस पूरे यंत्र का भार लगभग 270 कि. ग्रा. है। इस मशीन का अनुमानित मूल्य 40,000 हजार रुपये है। किसान भाई इस यंत्र के बारे में अधिक जानकारी के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के कृषि अभियांत्रिकी संभाग व अन्य प्रदेशों में स्थित कृषि विश्वविद्यालयों व भोपाल स्थित केंद्रीय कृषि इंजीनियरिंग संस्थान से सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अलावा

करनाल, हरियाणा में भारत इन्डस्ट्री लिमिटेड से भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। साथ ही किसान कॉल सेंटर नं. 1551 से भी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

बेड प्लान्टर की प्रमुख विशेषताएं

- यह मशीन दलहनी तथा तिलहनी फसलों की बुवाई हेतु काफी उपयोगी है।
- इससे गेहूं, मटर, चना, अरहर, मक्का, सोयाबीन, मूंग व उड़द आदि की बुवाई कर सकते हैं।
- इससे बुवाई करने पर खरपतवार कम पैदा होते हैं।
- इस विधि से बुवाई करने पर परम्परागत विधि की तुलना में उर्वरक, बीज व पानी की बचत होती है।
- फेलेरिस माइनर (गुल्ली डंड़ा) खरपतवार का मेड़ के ऊपर कम जमाव होता है।
- इस मशीन द्वारा औसतन एक घंटे में 0.2 हेक्टेयर क्षेत्र की बुवाई की जा सकती है।
- यह मशीन पानी की कमी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

एक्वा फर्टी–सीड ड्रिल

हमारे देश की कुल 143 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि का लगभग 75 प्रतिशत वर्षा–आधारित तथा बरानी खेती के अन्तर्गत आता है। देश में लगभग 95 प्रतिशत ज्वार व बाजरा तथा 90 प्रतिशत मोटे अनाजों का उत्पादन वर्षा–आधारित क्षेत्रों से ही आता है। इसके अलावा 91 प्रतिशत दालों और 85 प्रतिशत तिलहनों की पैदावार भी बरानी क्षेत्रों में होती है। परन्तु दुर्भाग्यवश इन बरानी क्षेत्रों से कुल उत्पादन का मात्र 45 प्रतिशत ही प्राप्त होता है। इसका प्रमुख कारण वर्षा का असमय, अल्पवृष्टि या अतिवृष्टि है। साथ ही इन क्षेत्रों में वर्षा जल का सही प्रबन्ध न होना। वर्षा आश्रित तथा बरानी क्षेत्रों में अत्याधुनिक कृषि यन्त्रों का सही समय पर प्रयोग कर प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादकता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में एक्वा फर्टी सीड ड्रिल की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। फार्म शक्ति की कमी के कारण किसान भाई समय पर वांछित कृषि कार्यों का संपादन नहीं कर पाते हैं। बरानी क्षेत्रों के लिए वरदान एक्वा फर्टी सीड ड्रिल के प्रयोग से समय, धन, श्रम व ऊर्जा की बचत के साथ–साथ क्षमतापूर्वक फसलों की बुवाई की जा सकती है। बरानी क्षेत्रों में प्रति इकाई क्षेत्र अधिक पैदावार लेने हेतु समुचित नमी संरक्षण के साथ–साथ सही समय पर फसलों की बुवाई व खाद तथा उर्वरकों की उचित मात्रा का सही विधि से समय पर प्रयोग करना चाहिए।

एक्वा फर्टी सीडड्रिल बरानी क्षेत्रों में रबी की फसलों की बुवाई के लिए उपयोगी है। सामान्यतः बरानी क्षेत्रों में बुवाई के समय खेत में नमी की कमी होती है। इस मशीन से फसलों की बुवाई करने पर उत्पादन में 10–12 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। इसका मुख्य कारण है कि इस मशीन से बुवाई करने पर बीज उचित गहराई और उचित दूरी पर समान रूप से गिरता है। साथ ही अनावश्यक रूप से बीज भी गिरने से बचता है। फसल की बुवाई लाइनों में होने से निराई–गुड़ाई भी आसानी से की जा सकती है। इस मशीन से पंक्तियों में बीज के साथ उर्वरक का घोल भी डाला जाता है जिससे बीजों के जमने और पौधों के प्रारम्भिक विकास में मदद मिलती है। इस मशीन के मुख्य भागों में बीज का बक्सा, बीज की उपयुक्त नियन्त्रण प्रणाली, कूड़ बनाने के खुर्पे तथा उर्वरक घोल डालने के लिए प्लास्टिक पाइपों का पेरिस्टालस्टिक पम्प इस तरह डिजाईन किया गया है कि उर्वरक घोल की आवश्यक मात्रा टेंक से मशीन के किसी भाग को बिना कोई नुकसान पहुंचाए, सीधे पाइप से होता हुआ जमीन पर पहुंच जाए। गेहूं की बुवाई के लिए इससे 8000–10000 लीटर उर्वरक घोल की मात्रा प्रति हेक्टेयर खेत में डाली जा सकती है। बीज की मात्रा के नियंत्रण के लिए फ्लूटेड रोलर प्रणाली का उपयोग किया जाता है। यह मशीन 45 अश्वशक्ति ट्रैक्टर से चलती है और इससे एक घंटे में एक एकड़ क्षेत्र की बुवाई की जा सकती है। इसका अनुमानित मूल्य 25,000 रुपये है।

रिज मेकर

यह आधुनिक यंत्र मेड़ बनाने का कार्य करता है। यह एक ट्रैक्टर–चालित यंत्र है। आजकल मजदूरों की कम उपलब्धता और उनकी अधिक मजदूरी को देखते हुए रिज मेकर बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। रिज मेकर मेड़ों पर बोयी जाने वाली फसलों के लिए बहुत उपयुक्त है। इस यंत्र से मेड़ें बनाने के साथ–साथ फसलों की निराई भी की जा सकती है। इससे समुचित सिंचाई करने में भी मदद मिलती है। मेड़ बनाने से पूर्व किसान भाई ध्यान रखें कि खेत की ढलान व दिशा किस ओर है। रिज मेकर से मेड़ें हमेशा ढलान की दिशा में ही बनानी चाहिए। इससे सिंचाई जल उपयोग दक्षता तो बढ़ेगी ही, साथ ही पानी की भी बचत होगी। रिज मेकर से 30 सें.मी. चौड़ी नाली तथा 40 से 70 सें.मी. चौड़ाई की मेड़ बनाई जा सकती है। इस यंत्र से 3 नालियां तथा 4 मेड़ें एक साथ बनाई जा सकती है। इस यंत्र के प्रयोग से नाली बनाने में लगने वाली ऊर्जा, समय एवं धन की बचत होती है। खेती में रिज मेकर के प्रयोग से मजदूरों पर निर्भरता में भी कमी आती है तथा उच्च गुणवत्ता वाली अधिक फसल पैदावार प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

रिज पैकर

रिज मेकर द्वारा बनी मेड़ों को दबाने व उनको सही आकार देने हेतु रिज पैकर का प्रयोग किया जाता है। यह यन्त्र एक साथ 3 नाली तथा 4 मेड़ों को आकार देता है। यह फार्म उपकरण 30 सें.मी. चौड़ी नाली तथा 40 सें.मी. चौड़ी मेड़ बनाने के लिए उपयोगी है। रिज मेकर द्वारा बनाई नाली की मिट्टी ठीक से दबी हुई नहीं होती और पहली सिंचाई या वर्षा के बाद ही मिट्टी कटाव से नाली का आकार बिगड़ने लगता है। रिज पैकर द्वारा दबाई गयी मेड़ ज्यादा टिकाऊ व सुरक्षित होती है। ये मेड़ें अगली फसल के लिए भी इस्तेमाल की जा सकती हैं। रिज पैकर द्वारा बनाई गई नालियां व मेड़े टिकाऊ होती हैं। नालियों में सिंचाई करने पर पानी की बचत होती है। रिज मेकर द्वारा बनी मेड़ों पर खरपतवार भी नियंत्रण में रहते हैं। फसलों में उगने वाले खरपतवार फसलों के पौधों के साथ स्थान, पानी, प्रकाश, वायु व पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इस प्रतिस्पर्धा के कारण फसलें शुरुआती अवस्था में ही कमजोर पड़ जाती हैं। यदि खरपतवारों को समय पर नियंत्रण नहीं किया जाता है तो फसलों की पैदावार में 10 से 40 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। यह खरपतवारों के प्रकार और उनकी सघनता पर निर्भर करती है। अतः खरपतवारों के नियन्त्रण और अधिक पैदावार लेने हेतु उन्नत औजारों को काम में लेने के साथ–साथ फसलों को पंक्तियों में बोया जाना अति आवश्यक है। उन्नत कृषि यंत्रों से कार्य समय पर व सही होता है तथा ऊर्जा, धन व श्रम की भी बचत होती है।

कम्बाईन हार्वेस्टर

आजकल उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों जैसे पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व उत्तरांचल में फसलों की कटाई कम्बाईन हार्वेस्टर द्वारा की जा रही है। पारम्परिक हसिएं (दरांती) द्वारा फसलों की कटाई तथा गहाई में देरी हो जाती है। परिणामस्वरूप खेत समय पर खाली न होने पर अगली फसल की बुवाई में देरी हो जाती है। कभी–कभी फसल देर से काटने पर प्राकृतिक आपदाओं जैसे वर्षा, ओले व आंधी–तूफान से भी बर्बाद हो जाती है। साथ ही ऐसी परिस्थितियों में फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी आ जाती है जिनका बाजार में उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। इसके अलावा दरांती से फसलों की कटाई करने पर लागत भी अधिक आती है तथा समय भी अधिक लगता है। कम्बाईन हार्वेस्टर द्वारा गेहूं, धान, सरसों, तिलहन, सोयाबीन, चना आदि की कटाई तथा गहाई एक साथ कर सकते हैं। कम्बाईन से 2.7 से 5 मीटर की चौड़ाई तक फसल काट सकते हैं। इस यंत्र के मुख्य अंग इस प्रकार हैं : ईंजन (50 से 60 हार्स पावर), कटरबार, गहाई इकाई, सफाई इकाई, ग्रेनटैंक इत्यादि। इस यंत्र से बहुत कम नुकसान होता है। साथ ही गिरी हुई फसल की भी कटाई की जा सकती है। इस मशीन द्वारा तीनों क्रियाएं कटाई, गहाई तथा सफाई एक साथ कर सकते हैं। इससे समय की बचत तो होती ही है साथ ही किसान भाईयों को फसल उत्पादों के बाजार में समय से पहुंचने पर अच्छी कीमत मिल जाती है। इस मशीन से दानों की टूट तथा हानि कम से कम होती है। कम्बाईन से कटाई करने पर साबुत दाने व अच्छी साफ–सुथरी दशा में प्राप्त होते हैं। इस यंत्र द्वारा फसलों की कटाई–गहाई करने पर कम खर्च आता है एवं समय की भी बचत होती है।

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई–मेलः madhu.sdsyahoo.com

अभिनव कृषि तकनीक विकास का महाअभियान

डॉ. बृजेश कुमार

अभिनव कृषि तकनीकों के तहत उन्नत पैदावार के लिए जैव कृषि यानी हरी खाद का प्रयोग ज्यादा कर हम लाभान्वित हो सकते हैं। यह प्राकृतिक रूप से भूमि को पोषण प्रदान करती है और रासायनिक उर्वरकों की भांति भूमि को क्षति भी नहीं पहुंचाती। अच्छी पैदावार के लिए हमें जैव उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा देना होगा। मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए हमें उन जीवाणुओं पर ध्यान देना होगा, जोकि मृदा की सेहत को सुधारने का काम करते हैं। इन जीवाणुओं को उपयुक्त बीजों में वाहक पदार्थों द्वारा रोपित कर जैव उर्वरक के रूप में काम में लाया जा सकता है, जिससे भूमि का स्तर सुधरता है और फसल का भी।

भारत एक कृषि प्रधान देश है और एक कृषि प्रधान देश होने के कारण हमारे यहां उन्नत कृषि को वरीयता दी जा रही है और इसके लिए प्रयास भी किये जा रहे हैं। देखने को यह मिल रहा है कि अक्सर उन्नत कृषि में भारतीय खेती का परम्परागत स्वरूप अवरोधक की भूमिका निभाता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय कृषि को एक प्रौद्योगिकी के रूप में विकसित किया जाए और इसके लिए अभिनव कृषि तकनीकों को अपनाया जाए। यह कृषि की एक आधुनिक व नूतन अवधारणा है कि भारतीय कृषि में नव प्रयोगों की शुरुआत की जाए। पिछले कुछ समय में इन नव प्रयोगों का सूत्रपात भी हुआ है।

जैव कृषि

अभिनव कृषि तकनीकों के तहत उन्नत पैदावार के लिए जैव कृषि यानी हरी खाद का प्रयोग ज्यादा कर हम लाभान्वित हो सकते हैं। यह प्राकृतिक रूप से भूमि को पोषण प्रदान करती है

और रासायनिक उर्वरकों की भांति भूमि को क्षति भी नहीं पहुंचाती। वस्तुतः फलीदार पौधों की मूल ग्रंथियों में होने वाली नाइट्रोजन यौगिकीरण की क्रिया से प्राप्त होने वाली नाइट्रोजन निवेश की व्यवस्था नाइट्रोजन उर्वरक का एक आकर्षक वैकल्पिक प्राकृतिक स्रोत है, जोकि अकार्बनिक नाइट्रोजनी उर्वरकों की तुलना में अधिक टिकाऊ होता है। जैव स्रोतों, मसलन कृषि अवशेषों व गोबर आदि का प्रयोग कर हम प्राकृतिक रूप से भूमि की उर्वरा– शक्ति को बढ़ा सकते हैं तथा अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते हैं। इसी क्रम में हमें जैव उर्वरकों के प्रयोग को भी प्रोत्साहन देना होगा, क्योंकि जीवाणु बहुत हद तक भूमि की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने में योगदान देते हैं। इन्हें उपजाऊ मिट्टी का महत्वपूर्ण अवयव माना जाता है। ये न सिर्फ मिट्टी की संरचना के विकास में योगदान देते हैं, बल्कि पोषक तत्वों को भी बढ़ाते हैं। महत्वपूर्ण जीवाणु की उपस्थिति यदि मृदा में नहीं होती है तो उसकी उर्वराशक्ति क्षीण हो जाती है और यह निहायत जरूरी हो जाता है कि मिट्टी की जीवंतता को बढ़ाने के लिए उसमें उस आवश्यक जीवाणु का प्रवेश करवाया जाए। अच्छे व महत्वपूर्ण जीवाणुओं का प्रवेश मृदा में करवा कर उसमें मौजूद रहने वाले घटिया जीवाणुओं को हटाया जा सकता है।

अच्छी पैदावार के लिए हमें जैव उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा देना होगा। मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाने के लिए हमें उन जीवाणुओं पर ध्यान देना होगा, जोकि मृदा की सेहत को सुधारने का काम करते हैं। इन जीवाणुओं को उपयुक्त बीजों में वाहक पदार्थों द्वारा रोपित कर जैव उर्वरक के रूप में काम में लाया जा सकता है, जिससे भूमि का स्तर सुधरता है और फसल का भी। जैव उर्वरक, रासायनिक उर्वरकों की तुलना में अधिक लाभदायी होते हैं। जैव उर्वरकों की यह विशिष्टता होती है कि जब ये एक बार खेत को व्यवस्थित कर देते हैं, तो बार–बार इन्हें डालने की जरूरत नहीं होती है, जबकि रासायनिक उर्वरकों के साथ ऐसा नहीं होता है। जैव उर्वरकों का एक लाभ यह भी है कि ये पौधों की जड़ों को रोगों से भी बचाते हैं। जबकि रासायनिक उर्वरकों में यह क्षमता नहीं होती है, क्योंकि वे निर्जीव होते हैं। रासायनिक उर्वरकों को जहां पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक माना गया है, वहीं जैव उर्वरक पर्यावरण के अनुकूल माने जाते हैं।

जैव पीड़क कीट नियंत्रण

अभिनव कृषि तकनीकों के तहत जैव पीड़क कीट नियंत्रण को भी काफी कारगर माना गया है। यह विधि पर्यावरण के भी अनुकूल रहती है। वस्तुतः प्रकृति में पीड़कों के शत्रु भी पाए जाते हैं, किन्तु वे इसलिए असर नहीं दिखा पाते, क्योंकि आधुनिक कृषि उत्पादन पीड़कों की वृद्धि को प्रोत्साहित करतीं है। जैव कीटनाशक नियंत्रण का उद्देश्य एक ऐसे पारिस्थितिकी तंत्र को तैयार करना है, जोकि पीड़कों के समुदाय के जीवित बचे रह पाने के अवसरों को जैव अभिकर्ताओं के माध्यम से कम कर दे। जैव अभिकर्ताओं का प्रयोग इस तरह से करना चाहिए कि वे पीड़क विशेष को ही नष्ट करें तथा आसपास के अन्य जीवों को कोई नुकसान न पहुंचाए। रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभावों से हम–आप सभी परीचित हैं। ये पर्यावरण को तो क्षतिग्रस्त करते ही हैं, उन जीवों को भी अपना ग्रास बना लेते हैं, जिन्हें हम नहीं मारना चाहते। जैवपीड़क कीट नियंत्रकों के साथ ऐसा खतरा नहीं रहता है। ये वातावरण में अधिक समय तक बने भी नहीं रहते हैं। और कुछ समय बाद स्वतः नष्ट हो जाते हैं। पारिस्थितिकी संतुलन की दृष्टि से जैव पीड़क कीट नियंत्रण को रासायनिक नियंत्रण की तुलना में बेहतर विकल्प माना गया है। अतः उन्नत कृषि व सुरक्षित कृषि की दृष्टि से जैव पीड़क कीट नियंत्रण को अपनाकर हम लाभान्वित हो सकते हैं।

नाइट्रीकरण निरोधकों को अपना कर हम जहां नाइट्रोजनी उर्वरकों के खतरों को कम कर सकते हैं, वहीं अच्छी पैदावार भी प्राप्त कर सकते हैं। नाइट्रोजनी उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग से नाइट्रोजन रूपान्तरण की समस्या कृषि क्षेत्र में बढ़ी है। इसके निक्षालन से जहां भूमिगत जल दूषित होता है, वहीं इसके वाष्पन से वायुमंडल में अमोनिया की मात्रा बढ़ती है। इस प्रकार हमारे पर्यावरण को क्षति पहुंचती है। इस क्षति को नाइट्रीकरण निरोधक से कम किया जा सकता है। इसके लिए हमें जैव निरोधकों को प्रोत्साहित करना होगा।

सौर कृषि

उन्नत कृषि का एक उत्तम विकल्प सौर कृषि भी है। प्रचुर धूप हमारे देश की एक प्राकृतिक देन है, जो सौर कृषि में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकती है। यह हमारी खुशकिस्मती है कि हमारे देश में प्रतिवर्ष आपातित सौर विकिरण की मात्रा 60:1013 डी है और देश के अधिकांश भागों में सालाना 250 से 300 दिन पर्याप्त धूप रहती है। यानी कृषि कार्यों हेतु इस संसाधन के दोहन की अपार सम्भावनाएं हैं। इस बात की काफी गुंजाइश है कि प्रकाश संश्लेषण की कुशलता को बढ़ाकर संश्लेषित जैव पदार्थों की मात्रा और उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है। सौर ऊर्जा का जैविक उपयोग केवल प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से ही हो सकता है। इसे विकसित कर हम कृषि की प्रगति व ऊर्जा संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल कर सकते हैं। भू–जल को खींचने में भी यह ऊर्जा उपयोगी साबित हो सकती है। वस्तुतः सौर ऊर्जा एक विकेन्द्रीकृत ऊर्जा

तंत्र है, जो भारतीय समुदाय के लिए अत्यंत उपयोगी है। भोजन पकाने, पानी गरम करने, वायु तापन, फसलों को सुखाने आदि में तापीय रूपान्तरण के जरिये इस ऊर्जा का बेहतर उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है। पम्पों आदि को चलाने मे भी यह ऊर्जा प्रयुक्त हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में पीने तथा सिंचाई के पानी के लिए 'सौर फोटो वोल्टेक' बेहद उपयोगी साबित हो रहे हैं।

गोबर गैस

कृषि क्षेत्र में गोबर गैस के प्रयोग को बढ़ाकर हम ऊर्जा की दृष्टि से आत्मनिर्भर बन सकते हैं। इसका दोहरा लाभ है। कृषि क्षेत्र में ऊर्जा की जरूरतें तो इससे पूरी होती ही हैं, गैस निकलने के बाद बचे हुए पदार्थों का उपयोग हम खाद के रूप में भी कर सकते हैं। ऊर्जा संरक्षण की दिशा में गोबर गैस का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गोबर गैस मुख्यतः मिथेन होती है। डाइजेस्टरों में गोबर, लकड़ी, पुआल, अखबारों की रद्दी तथा प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थों को डालकर इसका निर्माण किया जा सकता है। इसकी उपयोगिता को हम इसी से समझ सकते हैं कि गैस का प्रयोग भोजन पकाने, प्रकाश व्यवस्था करने, तथा अन्य ऊर्जा सम्बन्धित जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। यहां तक कि इससे टयूबवैल भी चलाए जा सकते हैं। गोबर गैस बनाने के बाद बचे अवशेषों में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटेशियम की अच्छी मात्रा पाई जाती है तथा इन्हें खेतों में डालने से उपज बढ़ती है। इनमें महत्वपूर्ण जीवाणु पाए जाने के कारण ये अवशेष अच्छे जैव उर्वरकों का भी काम करते हैं और प्राकृतिक रूप से भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाते हैं। यह सुखद है कि बायो गैस ऊर्जा के व्यापक सामाजिक लाभों को दृष्टिगत रखते हुए हमारे देश में 'राष्ट्रीय बायो गैस विकास योजना' का सूत्रपात किया जा चुका है।

पवन ऊर्जा

कृषि जगत की अभिनव कृषि तकनीकों की दृष्टि से पवन ऊर्जा की उपादेयता को भी नकारा नहीं जा सकता। यह ऊर्जा प्राप्त करने का एक नवीकरणीय विकल्प है, जोकि कृषि क्षेत्र में बेहद उपयोगी साबित हो सकता है, बशर्ते इसका सुचारू और योजनाबद्ध तरीके से प्रयोग किया जाए। पवन ऊर्जा को यांत्रिक व विद्युत ऊर्जा में रूपान्तरित कर हम इससे लाभान्वित हो सकते हैं। सिंचाई के लिए तो पवन चक्कियां विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं, क्योंकि ये भूजल को खींचती हैं। इससे चलाए गए टरबाइन बिजली भी पैदा करते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार प्रायद्वीपीय और केन्द्रीय भारत के कई स्थानों में वार्षिक पवन घनत्व 3 KWHem2 दिन से भी अधिक हो जाता है। कुछ क्षेत्रों में जाड़ों में, जबकि ऊर्जा की आवश्यकता अधिक होती है, यह 10 KWHem2 दिन से भी अधिक हो जाता है। ये स्थितियां हमारे अनुकूल हैं, जिनका प्रयोग कृषि में कर हम आगे बढ़ सकते हैं। यह सुखद है कि देश के कुछ क्षेत्रों में कृषि की अभिनव तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है। यानी हम कृषि में नव प्रयोगों की तरफ ध्यान दे रहे हैं और ऐसा करके ही हम न सिर्फ खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बन सकते हैं, बल्कि उन्नत कृषि का परचम भी विश्व में लहरा सकते हैं।

(लेखक प्यारी देवी राजित स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहजनवां, गोरखपुर में सहायक प्रोफेसर (वाणिज्य) के पद पर नियुक्त हैं।)
ई–मेल : drbrijeshkumar44gmail.com

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।
शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)
डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।
कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग के नाम नई दिल्ली में देय हो।
नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....
पता ....
.... पिन ....
इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :
विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

In Association with
ETEN IAS
Institute for Administrative Services
ALS IAS
India's largest IAS Coaching Network
UPSC CIVIL SERVICES EXAM 2014 -15
INTEGRATED FOUNDATION COURSE:
Prelims Cum Mains • Optionals • Interview Guidance
• Current Affairs • All India Mock Test Series
(English & हिन्दी माध्यम)
BATCH STARTING JUNE & JULY'14
INDIA'S BEST IAS MENTORS
MR. JOJO MATHEWS
MR. MANISH GAUTAM
MR. SHASHANK ATOM
MR. MANOJ K. SINGH
Our Publications
CSAT
www.pearson.co.in
1464 RANKS IN LAST 12 YEARS
161 successful candidates in 2013
ALOK RANJAN JHA ALL INDIA RANK 1 2001 Exam
S. NAGARAJAN ALL INDIA RANK 1 2004 Exam
RUKMANI RIAR ALL INDIA RANK 2 2011 Exam
ANUPAMA T V ALL INDIA RANK 4 2009 Exam
Call: 9654200517/23 I Toll free: 1800-1038-362
Email: csp@etenias.com I Website: www.etenias.com
ETEN IAS CENTRES: Bangalore, Bhopal, Bilaspur, Chandigarh, Chennai(Anna Nagar & Adyar), Cochin(Ernakulam), Guwahati, Hyderabad, Jaipur, Jamshedpur, Kanpur, Kolkatta, Lucknow, Patna, Patiala, Raipur, Trivendram
ALWAYS LEARNING
PEARSON

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

जितेन्द्र द्विवेदी

कृषि की उत्पादकता पूरी तरह से मौसम, जलवायु और पानी की उपलब्धता पर निर्भर होती है। इनमें से किसी भी कारक के बदलने अथवा स्वरूप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। कृषि का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है, जल-जंगल-जमीन ही प्रकृति का आधार है और यही कृषि का भी। आपदाओं से कृषि पहले भी खतरे में पड़ती रही है। बाढ़-सूखा-भूस्खलन जैसी घटनाओं ने कई बार किसानों को भुखमरी के कगार पर खड़ा किया है, लेकिन ये आपदाएं अनेक वर्षों में एक बार आती थी इसलिए किसान संभल जाता था। आज ऐसी आपदाएं प्रतिवर्ष आ रही हैं और अपने भीषण स्वरूप में आ रही हैं। ऐसे में किसानों को इनसे निपटने के लिए ठोस उपाय ढूंढना जरूरी होता जा रहा है।

आज पूरी दुनिया पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पड़ रहे है। जलवायु में होने वाले यह परिवर्तन ग्लेशियर व आर्कटिक क्षेत्रों से लेकर उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्रों तक को प्रभावित कर रहे हैं। यह प्रभाव अलग–अलग रूप में कहीं ज्यादा तो कहीं कम महसूस किए जा रहे हैं। हमारे देश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल करीब 32.44 करोड़ हेक्टेयर है। इसमें से 14.26 करोड़ हेक्टेयर में खेती की जाती है। अर्थात देश के सम्पूर्ण क्षेत्र के 47 प्रतिशत हिस्से में खेती होती है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसा ही कारक है जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है। इस पर निर्भर लोगों की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

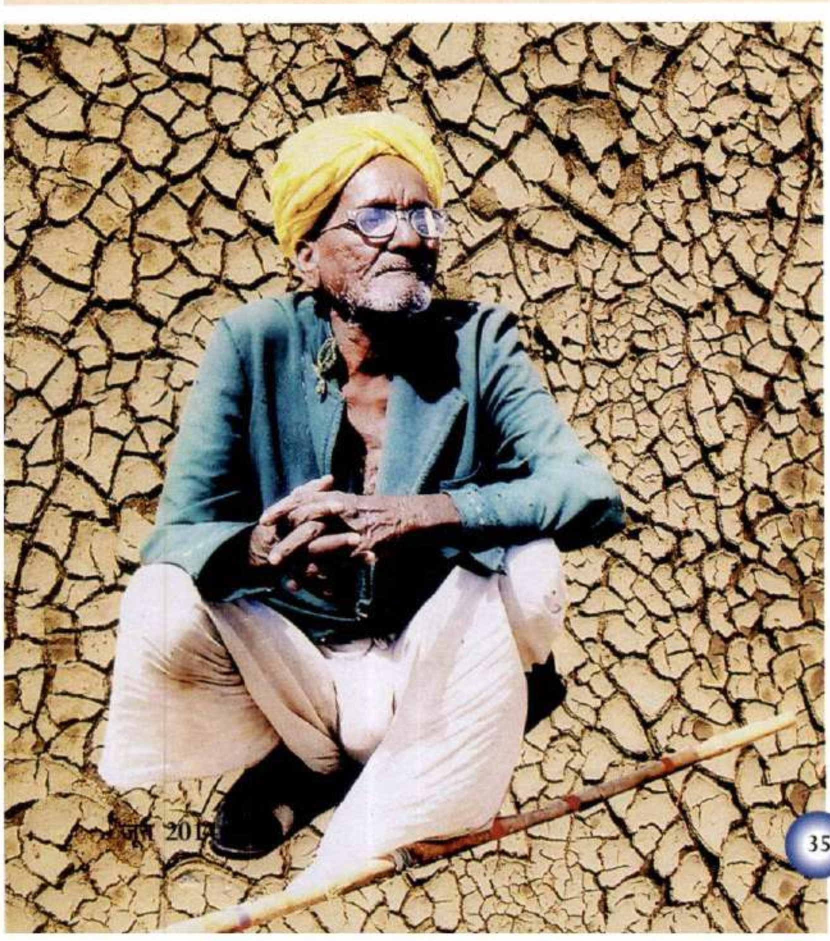

जलवायु परिवर्तन व बाढ़

भारत में मौसम बदलाव के एक प्रमुख प्रभाव के रूप में बाढ़ को देखा जा सकता है। देश का बहुत बडा क्षेत्र बाढ़ की विभीषिका को झेलता आ रहा है। परन्तु विगत दो दशकों से बाढ़ के स्वरूप,प्रवृत्ति व आवृत्ति में व्यापक परिवर्तन देखा जा रहा है। ऐसे बदलाव के चलते कृषि,स्वास्थ्य, जीवनयापन आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और जान–माल, उत्पादकता आदि की क्षति का क्रम बढ़ा है। ऐसा नहीं है कि देश के लिए बाढ़ कोई नई बात है परन्तु मौसम में हो रहे बदलाव ने इस प्राकृतिक प्रक्रिया की तीव्रता व स्वरूप को बदल दिया है और बाढ़ की भयावहता आपदा के रूप में दिखाई दे रही है। इसमें विशेषकर तेज व त्वरित बाढ़ का आना, पानी का अधिक दिनों तक रुके रहना तथा लम्बे समय तक जल–जमाव की समस्या सामने आ रही है। प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार रहे–

- वर्षों के क्रम में परिवर्तन आए हैं। वर्षा के समय, कुल वर्षो, वर्षों की क्रमबद्धता में बदलाव स्पष्ट दिखता है।
- बाढ़ त्वरित रूप में तेज गति से आने लगी है। बांधों के टूटने व अन्य कारणों से आकस्मिक बाढ़ भी आती रहती है।

- छोटी नदियां भी बाढ़ को विकराल करने में सहयोगी बन रही हैं।
- बड़ी झील, ताल, पोखरे आदि की निरन्तर कम होती संख्या की वजह से पानी को ठहरने की जगह नहीं मिलती।
- जल जमाव अधिक व लम्बे समय तक रह रहा है।

ऐसे परिवर्तनों का कृषि,स्वास्थ्य व जीवनयापन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जलवायु परिवर्तन ने बाढ़ को आपदा का रूप दे दिया है। कुछ क्षेत्रों में बाढ़ प्रत्येक वर्ष ही आती है परन्तु 3–4 सालों में बाढ़ की आवृत्ति में तेजी आ गई जिससे जान–माल का बहुत नुकसान होने लगा है।

जलवायु परिवर्तन व सूखा

मौसम बदलाव का दूसरा प्रमुख प्रभाव सूखे के रूप में देखा जा सकता है। तापमान वृद्धि एवं वाष्पीकरण की दर तीव्र होने के परिणामस्वरूप सूखाग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। मौसम बदलाव के चलते वर्षा समयानुसार नहीं हो रही है और उसकी मात्रा में भी कमी आई है। मिट्टी की जलग्रहण क्षमता का कम होना भी सूखे का एक प्रमुख कारण है। बहुत से क्षेत्र जो पहले उपजाऊ थे आज बंजर हो चले हैं। वहां की उत्पादकता समाप्त हो गई है। भारत के संदर्भ में ग्रीन पीस इण्डिया की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट इस बात को रेखांकित करती है कि भारत में सर्वाधिक आमदनी वाले वर्ग के एक फीसदी लोग सबसे कम आमदनी वाले 38 फीसदी लोगों के मुकाबले कार्बन–डाई–आक्साइड का साढ़े चार गुना ज्यादा उत्सर्जन करते हैं।

गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के अध्यक्ष डॉ. शिराज वजीह का कहना है कि लगातार बढ़ता शहरीकरण जलवायु परिवर्तन को और बढ़ावा देगा और बढ़ती शहरी जनसंख्या के कारण तमाम शहर गंभीर रूप से प्रभावित होंगे। शहरी क्षेत्रों के विस्तार के कारण उपजाऊ भूमि इमारतों के निर्माण हेतु उपयोग हो रही है तथा पेड़–पौधों की संख्या तेजी से कम होती जा रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अनुसार मात्र एक डिग्री सेण्टीग्रेड तापमान में वृद्धि से भारत में 40 से 50 लाख टन गेहूं की कम उपज का अनुमान है। इससे प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता कम होगी और खाद्य असुरक्षा तथा कुपोषण बढ़ेगा। यदि जलवायु परिवर्तनों को समय रहते कम करने तथा खाद्यान्न उपलब्धता बढ़ाने हेतु प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो शहरी गरीबों पर इसका गंभीर असर पड़ेगा और कुपोषित बच्चों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाएगी।

जलवायु परिवर्तन का फसलों पर प्रभाव

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जो संभावित प्रभाव दिखने वाले हैं वह मुख्य रूप से दो प्रकार के दिखाई दे सकते हैं। एक तो क्षेत्र आधारित, दूसरे फसल आधारित अर्थात विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकता है।

वर्ष	मौसम	तापमान वृद्धि (से.ग्रे.)		वर्षों में परिवर्तन (प्रतिशत)	
		न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम
2020	रबी	1.08	1.54	−1.95	4.36
	खरीफ	0.87	1.12	1.81	5.10
2050	रबी	2.54	3.18	−9.22	3.82
	खरीफ	1.81	2.37	7.18	10.52
2080	रबी	4.14	6.31	−24.83	4.50
	खरीफ	2.91	4.62	10.10	15.18

गेहूं और धान हमारे देश की प्रमुख खाद्य फसले हैं। इनके उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है।

गेहूं के उत्पादन पर प्रभाव

- अध्ययनों में पाया गया है कि यदि तापमान 2 से.ग्रे. के करीब बढ़ता है तो अधिकांश स्थानों पर गेहूं की उत्पादकता में कमी आएगी। जहां उत्पादकता ज्यादा है (उत्तरी भारत में) वहां कम प्रभाव दिखेगा, जहां कम उत्पादकता है वहां ज्यादा प्रभाव दिखेगा।

- प्रत्येक 1 से.ग्रे. तापमान बढ़ने पर गेहूं का उत्पादन 4–5 करोड़ टन कम होता जाएगा। अगर किसान इसके बुआई का समय सही कर लें तो उत्पादन की गिरावट 1–2 टन कम हो सकती है।

धान के उत्पादन पर प्रभाव

- हमारे देश में कुल फसल उत्पादन में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का हैं।
- तापमान वृद्धि के साथ–साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगेगी।
- अनुमान है कि 2 से.ग्रे. तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जाएगा।
- देश का पूर्वी हिस्सा धान उत्पादन से ज्यादा प्रभावित होगा। अनाज की मात्रा में कमी आ जाएगी।
- धान वर्षा आधारित फसल है इसलिए जलवायु परिवर्तन के साथ बाढ़ और सूखे की स्थितियां बढ़ने पर इस फसल का उत्पादन गेहूं की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होगा।

जलवायु परिवर्तन से केवल फसलों का उत्पादन ही नहीं प्रभावित होगा वरन् उनकी गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अनाज में पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी पाई जाएगी जिसके कारण संतुलित भोजन लेने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा और ऐसी कमी की अन्य कृत्रिम विकल्पों से भरपाई करनी पड़ेगी। गंगातटीय क्षेत्रों में तापमान वृद्धि के कारण अधिकांश फसलों का उत्पादन घटेगा।

जलवायु परिवर्तन का जल संसाधन पर प्रभाव

पृथ्वी पर इस समय 140 करोड़ घनमीटर जल है। इसका 97 प्रतिशत भाग खारा पानी है जो समुद्रों में स्थित है। मनुष्य के हिस्से में कुल 136 हजार घनमीटर जल ही बचता है। पानी तीन रूपों में पाया जाता है–तरल जोकि समुद्रों, नदियों, तालाबों और भूमिगत जल में पाया जाता है। ठोस–जोकि बर्फ के रूप में पाया जाता है। गैस–वाष्पीकरण द्वारा जो पानी वातावरण में गैस के रूप में मौजूद होता है। पूरे विश्व में पानी की खपत प्रत्येक 20 साल में दुगुनी हो जाती है जबकि धरती पर उपलब्ध पानी की मात्रा सीमित है। शहरी क्षेत्रों में, कृषि क्षेत्रों में और उद्योगों में बहुत ज्यादा पानी बेकार होता है। यह अनुमान लगाया जा रहा है यदि इसको सही ढंग से व्यवस्थित किया जाए तो 40 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषकों के लिए जल–आपूर्ति की भयंकर समस्या हो जाएगी तथा बाढ़ एवं सूखे की बारम्बारता में वृद्धि होगी। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लम्बे शुष्क मौसम तथा फसल उत्पादन की असफलता बढ़ती जाएगी। यही नहीं, बड़ी नदियों के मुहानों पर भी कम जलबहाव, लवणता, बाढ़ में वृद्धि तथा शहरी व औद्योगिक प्रदूषण की वजह से सिंचाई हेतु जल उपलब्धता पर भी खतरा महसूस किया जा सकता है। हमारे जीवन में भूमिगत जल की महत्ता सबसे अधिक है। पीने के साथ–साथ कृषि व उद्योगों के लिए भी इसी जल का उपयोग किया जाता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही पानी की मांग में बढ़ोतरी होने लगी है जो स्वाभाविक है। परन्तु बढ़ते जल प्रदूषण और उचित जल प्रबन्धन न होने के कारण पानी आज एक समस्या बनने लगा है। सारी दुनिया में पीने योग्य पानी का अभाव होने लगा है।

गांवों में जल के पारम्परिक स्रोत लगभग समाप्त होते जा रहे हैं। गांव के तालाब, पोखरे, कुंओं का जलस्तर बनाए रखने में मददगार होते थे। किसान अपने खेतों में अधिक से अधिक वर्षो तक जल का संचय करता था ताकि जमीन की आर्द्रता व उपजाऊपन बना रहे। परन्तु अब बिजली से ट्यूबवेल चलाकर और कम दामों में बिजली की उपलब्धता से किसानों ने अपने खेतों में जल का संरक्षण करना छोड़ दिया।

जलवायु परिवर्तन का मिट्टी पर प्रभाव

कृषि के अन्य घटकों की तरह मिट्टी भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। रासायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी

पहले ही जैविक कार्बन रहित हो रही थी। अब तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी और कार्यक्षमता प्रभावित होगी। मिट्टी में लवणता बढ़ेगी और जैव विविधता घटती जाएगी। भूमिगत जल के स्तर का गिरते जाना भी इसकी उर्वरता को प्रभावित करेगा। बाढ़ जैसी आपदाओं के कारण मिट्टी का क्षरण अधिक होगा वहीं सूखे की वजह से इसमें बंजरता बढ़ती जाएगी। पेड़–पौधों के कम होते जाने तथा विविधता न अपनाए जाने के कारण उपजाऊ मिट्टी का क्षरण खेतों को बंजर बनाने में सहयोगी होगा।

जलवायु परिवर्तन का रोग व कीट पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की बढ़त पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। तापमान,नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधों, फफूंद तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अंर्तसम्बन्धों में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे। गर्म जलवायु कीट–पंतगों की प्रजनन क्षमता में वृद्धि हेतु सहायक होती है। लम्बे समय तक चलने वाले बसंत, गर्मी व पतझड़ के मौसम में अनेक कीटों की प्रजनन संख्या अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जाड़ों में कहीं छुपकर ये लार्वा को बचाए रखते हैं। हवा के रूख में बदलाव से हवाजनित कीटों में वृद्धि के साथ–साथ बैक्टीरिया और फंगस में भी वृद्धि होती है। इनको नियंत्रित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में कीटनाशक प्रयोग किए जाएंगे जो अन्य बीमारियों को बढ़ावा देंगे। जानवरों में बीमारियां भी समान रूप से बढ़ेंगी।

फसल उत्पादन हेतु नई तकनीकों का विकास

गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के अध्यक्ष डॉ. शिराज वजीह का कहना है कि फसलों के सुरक्षित व समुचित उत्पादन हेतु ऐसी किस्मों की खेती को बढ़ावा देना होगा जो नई फसल प्रणाली व नए मौसम के अनुकूल हो। इसके लिए ऐसी किस्मों को विकसित करना होगा जो अधिक तापमान, सूखा और पानी में डुबाव होने पर भी सफलतापूर्वक उत्पादन कर सकें। आने वाले समय में ऐसी किस्मों की जरूरत होगी जो उर्वरक और सूर्य–विकिरण उपयोग के मामले में अधिक कुशल हो। लवणीयता और क्षारीयता को सहन करने वाली किस्मों को भी ईजाद करना होगा। अनेक पारम्परिक व प्राचीन प्रजातियां ऐसी मौजूद हैं, उन्हें ढूंढना होगा व उनका संरक्षण करना होगा।

सस्य विधियों में परिवर्तन

नई फसल और नये मौसम के अनुसार हमें बुआई के समय में भी बदलाव लाने होंगे ताकि तापमान का प्रभाव कम हो। फसलों के कैलेण्डर में कुछ बदलाव लाकर गर्म मौसम के प्रकोप से बचना व नम मौसम का अधिक उपयोग करना होगा। मिश्रित खेती व इन्टरक्रापिंग करके जलवायु परिवर्तन से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी अपनाना जलवायु परिवर्तन की अच्छी काट साबित होगा। यह केवल वातावरण में मौजूद कार्बन को सोखने का काम ही नहीं करेगी वरन् इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ेगी व आर्थिक–सामाजिक लाभ भी प्राप्त होगा।

खेतों में जल का संरक्षण

तापमान वृद्धि के साथ–साथ धरती पर मौजूद नमी समाप्त होती जाएगी। ऐसे में खेती में नमी का संरक्षण करना और वर्षा जल को एकत्र कर सिंचाई हेतु उपयोग में लाना आवश्यक होगा। जीरो टिलेज या शून्य जुताई जैसी तकनीकों का इस्तेमाल कर पानी के अभाव से निपटा जा सकता है। शून्य जुताई के कारण धान और गेहूं की खेती में पानी की मांग की कमी देखी गई है जबकि उपज में बढ़ोतरी हुई है और उत्पादन लागत 10 प्रतिशत तक कम हो गई है। इससे मिट्टी में जैविक पदार्थों की बढ़ोतरी भी होती है।

इसी प्रकार ऊंची उठी क्यारियों में रोपाई करना भी एक बेहतरीन तकनीक है, जिसमें पानी के उपयोग की क्षमता बढ़ जाती है। जलभराव कम होता है, खरपतवार कम आते हैं, लागत कम लगती है व लाभ ज्यादा होता है।

समग्रित खेती

आज खेती की सबसे बड़ी मांग यही है। जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से खेतों में विविधता तथा फसलों के साथ वृक्षों व जानवरों का संयोजन बहुत मायने रखता है। अब तक के अनुभवों तथा अध्ययनों में भी यह पाया गया कि जहां समग्रता थी वहां नुकसान का प्रतिशत कम रहा जबकि जहां एकल फसलें अथवा केवल पशुओं पर निर्भरता थी वहां नुकसान ज्यादा हुआ। खेती में समग्रता किसान को आत्मनिर्भर बनाती है, बाजार पर उसकी निर्भरता कम होती है तथा कठिन समय में भी उसकी खाद्य सुरक्षा बनी रहती है क्योंकि एक अथवा दो गतिविधियों के नुकसान से पूरी प्रक्रिया नष्ट नहीं होती। खेती में समग्रता अर्थात घर–पशुशाला–खेत के बीच उचित सामंजस्य व इनकी एक–दूसरे पर निर्भरता। आज जलवायु परिवर्तन से होने वाले कृषि के नुकसान को कम करने के साथ ही कृषि द्वारा किए जाने वाले गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने में भी समग्र खेती मददगार साबित हो रही है। इस प्रकार जैविक अथवा स्थायी कृषि को अपनाकर कृषि द्वारा होने वाले ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।

वनविकास/वृक्षारोपण : वृक्षारोपण स्वच्छ पर्यावरण का सूचक है। भारत में वृक्षों/वनों का उपयोग साधारणतः खाद्य सामग्री का उत्पादन करने, भवन निर्माण में लकड़ी अर्थात इमारती लकड़ी के उपयोग हेतु, औद्योगिक कार्यों के लिए कच्चा माल प्राप्त करने, औषधि प्राप्त करने, मृदा संरक्षण हेतु तथा पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए किया जाता है। वर्तमान में वनों का क्षेत्रफल 622 लाख हे. है, जो भौगोलिक क्षेत्रफल का भाग 19 प्रतिशत ही है, जबकि पर्यावरण के दृष्टिकोण से यह क्षेत्रफल 33 प्रतिशत होना आवश्यक है। आंकड़े बताते हैं कि भारतवर्ष में वनों का क्षेत्रफल प्रति व्यक्ति 1/2 हेक्टेयर से भी कम है। जबकि पूरे विश्व की औसत दर 1.9 हेक्टेयर है। वनों के घटते क्षेत्रफल के कारण पानी से 6000 मि. टन मिट्टी का कटाव प्रतिवर्ष हो जाता है। वनों से कीमती लकड़ी प्राप्त होने के अतिरिक्त एक पेड़ औसतन एक टन आक्सीजन पैदा करता है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि लगभग 50 वर्षों में एक वृक्ष 15 लाख रुपये मूल्य का लाभ प्रदान करता है। इस लाभ में आक्सीजन की प्राप्ति, भूमि संरक्षण, पशु प्रोटीन, मृदा नमी, मृदा जलचक्र, प्रदूषण नियंत्रण तथा पशु–पक्षियों को आश्रय देना शामिल है। वनों/वृक्षों का संरक्षण केवल कार्बन–डाइ–आक्साईड को वायुमण्डल से ले लेने के लिए नहीं, बल्कि जैविक संतुलन बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। वनों के कम होने का दुष्परिणाम जलवायु परिवर्तन के रूप में सामने आ ही गया है।

मेड़बन्दी : जलवायु परिवर्तन के कारण कई क्षेत्र वर्षों से सूखे से प्रभावित हैं। ऐसे में आवश्यक है कि खेत में वर्षा जल संरक्षण को सहयोग करने वाली गतिविधियों को बढ़ावा देना। मेड़बन्दी से ही खेत में आसानी से नमी संरक्षण संभव है। खेत में जलधारण क्षमता बढ़ाने मात्र का उपाय मेड़बन्दी है। मेड़बन्दी का महत्व सूखा क्षेत्र में अधिक है क्योंकि सूखाग्रस्त क्षेत्र में जलस्तर नीचा होता जाता है। मेड़बन्दी होने से मृदाक्षरण, मृदा उर्वरता का ह्रास नहीं होता है। वर्षा का पानी खेत में रुकने से मिट्टी की आर्द्रता भी बनी रहती है। साथ ही, भूगर्भ जल में बढ़ोतरी होती है जो खेती–किसानी के लिए अमूल्य निधि है। कृषि तथा जल का आपस में पारम्परिक संबंध है। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के साथ जल संसाधनों को बढ़ाकर मृदा जलस्तर में वृद्धि होने से मनरेगा योजना द्वारा जलवायु परिवर्तन की चुनौती से आसानी से निपटा जा सकता है।

सूखाग्रस्त क्षेत्रों में खेतों को छोटे–छोटे भागों में विभक्त कर मेड़ बांध देने से जमीन की जल शोषित करने की क्षमता में वृद्धि

होती है। विशेष रूप से ऐसे क्षेत्र जहां का भूगर्भ जल–स्तर काफी नीचे है और वहां सूखा की भी स्थिति बनी हुई है ऐसे स्थानों को ग्राम समाज चिन्हित कर एक वृहद् कार्ययोजना नरेगा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तुत कर सकती है। ऐसे करके किसान निम्न लाभ प्राप्त कर सकते हैं–

- खेत की उर्वर मिट्टी का बहाव नहीं होगा और जमीन की उर्वरता बनी रहेगी।
- वर्षा का पानी खेत में रुकने से मिट्टी की आर्द्रता बनी रहेगी।
- खेत में रुकने वाले पानी से भूगर्भ जल–स्तर भी ठीक होगा।
- स्थानीय–स्तर पर रोजगार भी उपलब्ध होगा और खेतों का विकास भी।

बागवानी : प्रायः गांव के किसान कहते हैं कि ''पीढ़ी–दर पीढ़ी मजा लेना है तो बाग–बागीचा लगा लो'' इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि खेती–किसानी में बागवानी का महत्वपूर्ण स्थान है। खेतों की स्थिति के अनुसार फलदार वृक्षों का रोपण कर किसान राष्ट्रीय बागवानी मिशन योजना के अन्तर्गत अच्छा लाभ कमा रहे हैं। फलदार वृक्षों के रोपण के लिए सरकार द्वारा उपरोक्त योजना के अन्तर्गत लघु सीमांत कृषकों के लिए अनुदान, तकनीकी सहयोग एवं संबंधित सूचनाएं समयानुसार उपलब्ध कराई जाती हैं। जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव से निपटने के लिए बागवानी किसानों के लिए वरदान साबित हुई है। क्योंकि एक तरफ बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि, असमय वृष्टि से फसलें प्रभावित हो रही हैं, वहीं बागवानी से किसान फसलों के होने वाले नुकसान की भरपाई कर रहा है। किसान की आय में वृद्धि हुई है। इस योजना के अन्तर्गत कई किसान लाभ कमा रहे हैं।

मचान खेती : जल निकास की उचित व्यवस्था न होने के कारण किसानों के खेत वर्षा ऋतु में डूब जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप खेतों में खड़ी सब्जियां, फसल बर्बाद हो जाती हैं। ऐसे में बाढ़ प्रभावित एवं थोड़ा निचले खेतों के लिए मचान वाली खेती अत्यंत ही उपयोगी पद्धति है। प्रायः जब किसान सब्जियों की खेती करते हैं उस समय वर्षा जरूर होती है और थोड़ी ही वर्षा होने पर खेतों में पानी लग जाता है। ऐसी अवस्था में खेतों में तैयार लौकी, नेनुआ, करेला, बोड़ा, जैसी लता वाली सब्जियां अगर जमीन पर ही लगाई गई हैं तो खेतों में पानी लगने से सड़ने लगती हैं या इनमें दाग पड़ जाते हैं जिससे किसानों को बाजार में उन सब्जियों की अच्छी कीमत नहीं मिल पाती और अन्ततः किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। मचान वाली खेती की शुरुआत आलू की खुदाई के पश्चात् मार्च महीने के मध्य से प्रारम्भ होती है जो मार्च से अक्टूबर तक की जाती है। कुछ किसान गेहूं की अगैती खेती करने के पश्चात भी मचान वाली खेती के माध्यम से सब्जी की खेती करते हैं। मचान की खेती से तात्पर्य बांस का ढांचा तैयार करने से है और उसी पर लता वाली सब्जियों को चढ़ा दिया जाता है। मचान बनाने का कार्य नर्सरी उगाने के साथ ही किया जाता है। इस प्रकार जब तक मचान बनाने का कार्य होता है तब तक किसान अपने घर पर ही सब्जियों की नर्सरी तैयार कर लेते हैं। मचान वाली खेती में लगातार सब्जियों जैसे लौकी, नेनुआ, कोहड़ा, बोड़ा, कुन्दरू आदि की खेती करते हैं तथा मचान के नीचे खाली पड़ी जमीन में दोहरी फसल भी ले सकते हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई–मेल : jitendraabf@gmail.com

पाठकों / लेखकों से अनुरोध

आप "कुरुक्षेत्र" पत्रिका के नियमित पाठक/लेखक हैं तो आप जरूर चाहेंगे कि आपके गांव या उसके आसपास आ रहे बदलाव के बारे में सभी लोगों को पता चले। आपके गांव या आसपास जरूर ऐसी कोई महिला/पुरुष या स्वयंसेवी संस्था होगी जिसके बूते पर बदलाव की ब्यार चली हो। सरकारी प्रयासों के चलते भी आपके गांव का कुछ कायापलट तो हुआ ही होगा।

अगर आपके पास ऐसी कोई भी जानकारी है तो आप उसे अपने शब्दों में लिखकर (फोटो सहित) भेजें। लेख छपने पर उसका उचित पारिश्रमिक भी दिया जाएगा। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो (kruti dev font 010) और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। हमारा पता है – वरिष्ठ संपादक, कुरूक्षेत्र (हिंदी), कमरा नं. 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110001, आप हमें लेख ई–मेल भी कर सकते हैं।

ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

स्वास्थ्य-चर्चा

घरेलू औषधि भी है लौकी

डॉ. सुनील कुमार खण्डेलवाल एवं डॉ. देवेन्द्र जैन

हरी सब्जियों में लौकी को श्रेष्ठ माना जाता है। लौकी मीठी और कड़वी दो प्रकार की होती है। सामान्यतया मीठी लौकी का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है। मीठी लौकी हल्की और सुपाच्य होती है। लौकी के सेवन से मस्तिष्क में तरावट आती है तथा आंतों को बल मिलता है और कब्ज की शिकायत दूर होती है। लौकी में दूध के सभी गुण पाए जाते हैं। वास्तव में यह वनस्पति-जन्य दूध ही है। अतः इसकी तुलना मां के दूध से की जाती है। लौकी का ताजा रस मां के दूध के समान ही पोषण प्रदान करता है। लौकी करीब-करीब बारहों महीने उपलब्ध होती है लेकिन शीत और गर्मी के मौसम में यह अधिकता से प्राप्त होती है।

लौकी का वैज्ञानिक नाम ***लाजेनेरिया वल्गेरिस*** है। यह कुकुरबिटेसी परिवार का प्रमुख फल शाक है। संस्कृत में इसे अलाबू या तुम्बी, गुजराती में दूधी, बंगाली में लावु, मराठी में दूधिया भोपला, पंजाबी में घीया, हिन्दी में लौकी, मीठी तोम्बी या लम्बा कद्दू आदि तथा अंग्रेजी में इसे बॉटल गोर्ड कहते हैं। अंग्रेजी में लौकी का दूसरा नाम केलुब्स कुकुम्बर भी है।

लौकी प्राचीन समय से ही पूरे विश्व में बहुत प्रचलित है। संभवतः लौकी का उद्गम स्थान अफ्रीका है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में मनुष्य द्वारा कृषित यह अति प्राचीन फसलों में से एक है और काफी विस्तार से फैली हुई है। भारत, श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलिपींस, चीन, अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र और दक्षिण अमेरिका में लौकी की व्यापक पैमाने पर खेती की जाती है।

फल वाली सब्जियों में लौकी देश भर में खाई जाने वाली लोकप्रिय सब्जी है। यह सभी जगह आसानी से उपलब्ध होने वाली सस्ती सब्जी है। यह श्रेष्ठ सब्जी के साथ–साथ उत्तम घरेलू औषधि भी है। लौकी आरोही अथवा जमीन पर खूब फैलने वाली बेल है। इसके पत्ते लंबे डंठल वाले, पांच पालिवाले तथा फूल बड़े सफेद, एकाकी होते हैं। फल आकार में गोल, चपटे, लंबोतरे व बेलनाकार होते हैं। बाहर से लौकी का फल चिकना होता है। लौकी के गूदे में अनेक बीज होते हैं। लौकी के बीजों से तेल निकाला जाता है तथा

तेल निकालने के पश्चात् बची खली पशुओं को खिलाई जाती है। हमारे देश में लौकी की खेती सभी स्थानों पर की जाती है और घरों में भी बेकार पड़ी जमीन पर बो दिया जाता है।

हरी सब्जियों में लौकी को श्रेष्ठ माना जाता है। लौकी मीठी और कड़वी दो प्रकार की होती है। सामान्यतया मीठी लौकी का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है। मीठी लौकी हल्की और सुपाच्य होती है। लौकी के सेवन से मस्तिष्क में तरावट आती है तथा आंतों को बल मिलता है और कब्ज की शिकायत दूर होती है। लौकी में दूध के सभी गुण पाए जाते हैं। वास्तव में यह वनस्पति–जन्य दूध ही है। अतः इसकी तुलना मां के दूध से की जाती है। लौकी का ताजा रस मां के दूध के समान ही पोषण प्रदान करता है। लौकी करीब–करीब बारहों महीने उपलब्ध होती है, लेकिन शीत और गर्मी के मौसम में यह अधिकता से प्राप्त होती है। रसोईघर में लौकी का इस्तेमाल सब्जी बनाने के अलावा हलवा, परांठे, पाक और कोफ्ते आदि में किया जाता है। चने की दाल के साथ बनाई गई लौकी की सब्जी स्वादिष्ट और गुणकारी होती है। लौकी का हलवा खाने में स्वादिष्ट और शीतल होता है।

कड़वी लौकी या तितलौकी फल का भी आयुर्वेदीय चिकित्सा में औषध रूप में उपयोग किया जाता है। कड़वी लौकी का आकार लंबी बोतल जैसा होता है। कड़वी लौकी के पत्र, फल आदि सभी मीठी लौकी के समान ही होते हैं, किन्तु फल स्वाद में बहुत कड़वा होता है। इसलिए इसे हिन्दी में कड़वी लौकी, संस्कृत में कटुतुम्बी तथा अंग्रेजी में बिटरगॉर्ड के नाम से जाना जाता है। कड़वी लौकी की मज्जा तिक्त होती है। तितलौकी का साधु–सन्यांसी जलपात्र बनाते हैं। सितार, वीणा आदि में तितलौकी का उपयोग किया जाता है।

आयुर्वेद के अनुसार मीठी लौकी शीतल, तरावट देने वाली, पेट के लिए हितकारी, बलदायक, पाचन क्रिया ठीक करने वाली, हृदय के लिए परम हितकारी, पित्त तथा कफ का शमन करने वाली, गरिष्ठ, वीर्यवर्द्धक, धातु पौष्टिक, रुचिकारक, उदर की उष्णता कम करने वाली, हृदय रोग के रोगी के लिए पथ्य, कब्जनाशक, गर्भवती महिलाओं के लिए पोषक और शान्ति देने वाली है।

यूनानी चिकित्सा के अनुसार लौकी के बीज मस्तिष्क की गर्मी को दूर करते हैं और मस्तिष्क को पुष्ट करते हैं। मस्तिष्क की गर्मी मिटाने और मस्तिष्क को तर करने के लिए हकीम लौकी के बीज के गर्भ का उपयोग करते हैं। अतः शारीरिक रूप से कमजोर एवं मानसिक दुर्बलता वाले व्यक्तियों के लिए यह एक उत्तम आहार है। सभी रोगों में लौकी का रस, सूप या सब्जी रोगी के लिए लाभकारी है।

पौष्टिकता की दृष्टि से लौकी में अनेक जीवनरक्षक पोषक तत्व पाए जाते हैं। लौकी में कार्बोहाइड्रेट (कार्बोज) तथा खनिज लवण जैसे– कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा पोटेशियम आदि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। प्रोटीन की दृष्टि से लौकी श्रेष्ठतम आहार है, क्योंकि इसमें शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक दस अमीनो अम्ल जैसे–आइसोल्यूसिन, ल्यूसिन, लायसीन, मिथियोनिन, फिनाइलएलेनीन, थ्रियोनिन, ट्रिप्टोफेन, वेलीन, आर्जीनिन, और हिस्टीडीन आदि उचित मात्रा में पाए जाते हैं। लौकी में विटामिन बी कॉम्पलेक्स समूह के विटामिन्स जैसे –थायमिन, राइबोफ्लेविन तथा नायसिन आदि उचित मात्रा में पाए जाते हैं। 100 ग्राम लौकी के सेवन से 12 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है (देखें तालिका 1)। अतः लौकी एक प्रकार से कम कैलोरी वाला आहार भी है।

तलिका 1: लौकी का पोषक मान
(खाद्य भाग के प्रति 100 ग्राम भार में)

पोषक तत्वों की मात्रा		खनिज एवं विटामिन	
नमी	96.1 प्रतिशत	कैल्शियम	20 मि.ग्रा.
कार्बोहाइड्रेट	2.5 प्रतिशत	फॉस्फोरस	10 मि.ग्रा.
प्रोटीन	0.2 प्रतिशत	आयरन	0.46 मि.ग्रा.
वसा	0.1 प्रतिशत	पोटेशियम	87 मि. ग्रा.
खनिज लवण	0.5 प्रतिशत	थायमिन	0.03 मि.ग्रा.
रेशे	0.6 प्रतिशत	राइबोफ्लेविन	0.01 मि.ग्रा.
ऊर्जा	12 किलो कैलोरी	नायसिन	0.2 मि.ग्रा.

औषधीय गुण : हमारी स्वदेशी चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के अनुसार लौकी में अनेकानेक औषधीय गुण विद्यमान होते हैं। घरेलू औषधि के रूप में लौकी का उपयोग अनेक सामान्य रोगों में किया जा सकता है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

पीलिया : पीलिया रोग में 15 से 30 मि.ली. लौकी के रस में थोड़ी सी मिश्री मिलाकर दिन में 2 से 3 बार पीने से रोग का शमन होता है। धीमी आंच पर लौकी को भूनकर भुर्ता बना लें। इसका रस निचोड़कर इसमें थोड़ी–सी पिसी मिश्री मिला लें। इसे पीने से पीलिया रोग दूर होता है। यह रस यक्ष्मा (टी. बी.) रोग को भी दूर करता है और शक्ति प्रदान करता है।

रक्तस्त्राव : शरीर के किसी स्थान से रक्त बह रहा हो तो लौकी के छिलके को बारीक पीसकर उस स्थान पर पट्टी बांध देने से रक्त का बहना बंद हो जाता है।

सिर दर्द : लौकी पित्तनाशक होती है, अतः पित्त की गर्मी के कारण सिर दर्द हो रहा हो तो लौकी के गूदे को पीसकर सिर पर लेप करने से आराम मिलता है। लौकी को चीरकर, दो टुकड़े करके सिर पर बांधने से मस्तिष्क में यदि गर्मी चढ़ गई हो तो वह उतर जाती है।

हृदय रोग : हृदय रोग आज तेजी से फैलता जा रहा है। खान–पान की स्वच्छन्दता, भौतिकवाद की होड़ में तरह–तरह के मांसाहारी एवं गरिष्ठ खाद्य पदार्थों के प्रति आकर्षण, शारीरिक श्रम की न्यूनता, मानसिक तनाव आदि हृदय रोग की वृद्धि के कारण हैं। हृदय की शिराएं जब अवरुद्ध हो जाती हैं तो हृदयघात की सम्भावना बन जाती है। अधिक चिकनाईयुक्त, वसायुक्त भोजन खून में थक्के जमाता है तथा उसी का कुपरिणाम रक्त वाहिनियां अवरुद्ध होने के रूप में सामने आता है। आधुनिक विज्ञान ने हृदय रोग के निदान के लिए बाईपास सर्जरी, पेसमेकर जैसी अनेक अत्यन्त खर्चीली सुविधाएं ईजाद की हैं, किंतु इनका उपयोग साधारण रोगी नहीं कर पाता है।

हृदय रोग के रोगी के लिए लौकी अमृत के समान होती है और उत्तम औषधि का कार्य करती है। सामान्य हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को लौकी की सब्जी के साथ–साथ इसके रस का 10–20 मि.ली. तक प्रतिदिन सुबह–शाम सेवन करना चाहिए, लेकिन जब रक्त वाहिनियां अवरुद्ध हो जाती हैं तो हृदय रोगियों को यह अनुभूत प्रयोग करना चाहिए, जिसकी विधि इस प्रकार है–

लौकी को कद्दूकस पर छिलका सहित कसकर मिक्सी में डाल दें। ऊपर से तुलसी के 8 पत्ते, पोदीने के 5 पत्ते और 5 काली मिर्च डालकर पीस लें और कपड़े में रखकर निचोड़ कर रस निकाल लें। उस रस की मात्रा 125–150 मि.ली. होनी चाहिए। इसमें शुद्ध साफ पानी बराबर मात्रा में मिला लें और एक ग्राम सेंधा नमक डाल दें। अब इस ताजा रस को भोजन करने के आधा या पौन घंटे के पश्चात् सुबह, दोपहर एवं रात्रि में तीन बार ले। लौकी का रस पेट की सफाई करता है। अतः शुरु में 3–4 दिन तक रस की मात्रा कम ली जा सकती है। रस हर बार ताजा लेना चाहिए। प्रारम्भ में यदि पेट में कुछ गड़गड़ाहट महसूस हो या एक–दो दस्त भी हो जाते हैं तो चिन्तित या भयभीत न हो। पेट साफ होते ही ऐसा होना बंद हो जाएगा क्योंकि लौकी का यह रस पेट में पल रहे विकारों को भी दूर करता है। हृदय रोग एक गम्भीर रोग है अतः अपने चिकित्सक की सलाह और देखरेख में ही इस चिकित्सा का उपयोग करना चाहिए।

अस्थमा : अस्थमा तथा दमा रोग के लिए एक कच्ची ताजा लौकी को चुनकर, उस पर भीगा कपड़ा लपेटकर इस लौकी को गरम बालू में रखकर आधा घंटे तक भूनें। भूनने के बाद

इसका रस निकाल लें। अब इस रस को सुरक्षित रखकर नियमित रूप से चालीस दिनों तक रोगी को पिलाएं। इस प्रयोग से दमा के साथ–साथ वास क्रिया भी सामान्य हो जाएगी।

रक्तविकार : आधा कप लौकी के रस में मिश्री मिलाकर सुबह–शाम पीने से रक्त विकार दूर हो जाता है।

गठिया : लौकी के 100 मि.ली. रस में 2–3 ग्राम सोंठ का चूर्ण मिलाकर पीने से गठिया की सूजन तथा दर्द से राहत मिलती है।

पैरों की जलन : पैरों में जलन होने पर लौकी को पीसकर तलुवों पर आधा घंटे तक मालिश करने से जलन दूर हो जाती है। यह प्रयोग नियमित रूप से दस–बारह दिन तक किया जाए तो गर्मी के विकार से पूर्णतः छुट्टी मिल जाएगी।

दस्त : लौकी को कद्दूकस करके थोड़ा पानी डालकर उबाल लें। फिर दही को अच्छी तरह मथकर उसमें उबली हुई लौकी को निचोड़ कर मिला दें और उसमें सेंधा नमक, भुना जीरा, काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर दिन में 3 से 4 बार सेवन करने से बार–बार दस्त की परेशानी में राहत मिलती है।

दांत दर्द : लौकी 100 ग्राम और लहसुन 25 ग्राम लेकर पीस लें। एक लोटा भर पानी डालकर उबालें। जब पानी आधा रह जाए तब मसल छानकर इससे कुल्ला करें तो दांत का दर्द दूर हो जाएगा।

नेत्र विकार : लौकी को छिलके सहित जलाकर भस्म बना लें। इसे कपड़े से तीन बार छानकर एक शीशी में रख लें। इसे प्रतिदिन कांच की सलाई से आंखों में अंजन की तरह लगाएं। इससे नेत्र विकार दूर हो जाते हैं तथा आंखों की ज्योति बढ़ती है।

कील–मुंहासे : लौकी के फल के रस में नींबू का रस मिलाकर मुंहासों पर लगाते हैं। बाद में कुनकुने पानी में नींबू की दो–चार बूंदे डालकर अच्छी तरह धोएं, फिर तौलिये से साफ करें।

बुखार : पैरों के तलवों पर पानी का छींटा मारते हुए लौकी का गूदा घिसने से बुखार उतर जाता है।

अनिद्रा : जिन लोगों को नींद कम आती है, उन्हें लौकी के रस में थोड़ा तिल्ली का तेल मिलाकर सोने से पूर्व सिर पर मालिश करने से अच्छी नींद आने लगती है।

प्यास : लौकी के रस का प्रभाव ठंडा होता है, अतः जिन रोगों में अधिक प्यास लगती है, उनमें लौकी के रस का सेवन करना फायदेमंद होता है।

बिच्छू काटना : बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लौकी को पीस कर लेप करने से और लौकी का रस पीने से दर्द दूर होता है।

कब्ज : यदि आप कब्ज से परेशान हो तो बिना मिर्च–मसाले के देशी घी में बनी लौकी की सब्जी नियमित कुछ दिनों तक सेवन करें, कब्ज से राहत मिलेगी।

सावधानी : लौकी का सर्वाधिक उपयोग सब्जी तथा रायता बनाने में किया जाता है। कुछ लोग लौकी को छीलकर सब्जी बनाते हैं, जिससे इसके कई पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं, अतः लौकी का सेवन छिलके सहित करना चाहिए। लौकी का उपयोग हमेशा उबाल कर ही करना चाहिए, तल–भून कर नहीं करना चाहिए।

वरिष्ठ तकनीकी सहायक एवं सहायक प्राध्यापक,
आणविक जीव विज्ञान एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग,
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
ई–मेल : khandelwalskyahoo.com

सफलता की कहानी

खेती में विविधिकरण से मिली सफलता

डॉ. अजय कुमार सिंह

प्रयोगधर्मी एवं प्रगतिशील कृषक सुनील कुमार जायसवाल अपनी सफलता का श्रेय अपने कठिन परिश्रम के साथ आत्मा के कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम को देते हैं। सुनील नवीन तकनीक को अपनाने वाले एक अग्रणी किसान हैं। इनके पास कुल दस एकड़ भूमि है, जिसमें सात एकड़ भूमि सिंचित एवं तीन एकड़ भूमि असिंचित है, जिस पर धान व गेहूं के साथ दलहनी, तिलहनी तथा सब्जी में मुख्यतया अदरक, हल्दी, टमाटर, आलू आदि की खेती करते हैं।

दिसम्बर 31, 1970 को बलरामपुर–रा.ग. जिले के राजपुर विकासखण्ड के अन्तर्गत खोखनियां गांव में जन्में प्रयोगधर्मी एवं प्रगतिशील कृषक सुनील कुमार जायसवाल अपनी सफलता का श्रेय अपने कठिन परिश्रम के साथ आत्मा के कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम को देते हैं। सुनील कुमार मात्र आठवीं तक की शिक्षा प्राप्त कर पाए हैं, जिसका कारण परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक ना होने से पढ़ाई करने में असमर्थ रहना था। सुनील नवीन तकनीक को अपनाने वाले एक अग्रणी किसान हैं। सुनील बताते हैं कि केवल धान, गेहूं की खेती से परिवार के दैनिक खर्चे को चला पाना मुश्किल हो जाता था, जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने कृषि विभाग के साथ अन्य विभागों से सम्पर्क कर शासन की विभिन्न योजनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर, उनके अनुसार ही अपनी खेती की योजना बनाई। साथ ही आत्मा योजनान्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेकर अनाज उत्पादन के साथ सब्जी, पशुपालन के साथ खेती करने का निर्णय लिया। अपनी आय को बढ़ाने के लिए सुनील एक हेक्टेयर खेत में गन्ने का उत्पादन करते हैं जिससे उन्हें अच्छी आय प्राप्त हो जाती है।

सुनील कुमार अपनी सफलता की कहानी बताते हुए कहते हैं कि मेरे पिता श्री रामेश्वर प्रसाद परम्परागत खेती करते थे, जिनके अपनाए मार्ग पर चलकर मैं भी परम्परागत खेती करने लगा। परन्तु इससे मुझे सन्तुष्टि नहीं मिली क्योंकि इससे मेरी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। साथ ही मेरे बच्चों की शिक्षा–दीक्षा भी अधर में दिखाई दे रही थी। जिसके लिए मैंने कुछ अलग हटकर काम करने के उद्देश्य से उन्नत तकनीक अपनाकर खेती करने की योजना बनाई। मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या भूमि की उर्वराशक्ति का क्षीण होना था। क्योंकि उस समय केवल एक ही प्रकार का फसल चक्र अपनाया

जाता था। अपनी भूमि की उर्वराशक्ति को बनाए रखने के लिए तथा उसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने के लिए मैं अपने खेत में प्रति वर्ष ढैंचा का उत्पादन करता हूं जिसे तैयार होने के बाद खेत में जोतकर मिला देता हूं। साथ ही आवश्यकतानुसार फसल –चक्र भी अपनाता हूं जिससे हमारा खेत हमेशा उर्वर बना रहे। साथ ही मैं अपनी फसल में पर्याप्त मात्रा में केंचुआ खाद तथा गोबर गैस प्लांट से प्राप्त खाद का भरपूर उपयोग करता हूं। मैं खेती करने के लिए स्वस्थ बीज के चयन के लिए नमक उपचार विधि का प्रयोग करता हूं जिसके द्वारा मुझे स्वस्थ बीज की प्राप्ति हो जाती है। साथ ही मैं अपने बीज को खेत में लगाने से पूर्व एक कवकनाशी दवा के साथ कीटनाशी रसायन से भी उपचारित करता हूं। इसके अलावा मैं अपने बीज को कल्चर से भी उपचारित करता हूं। और बीज खरीदते समय बीज की रोग प्रतिरोधी क्षमता का भी ध्यान रखता हूं।

धान का उत्पादन – वर्तमान में मैं पांच एकड़ खेत में धान का उत्पादन करता हूं जिसमें प्रति एकड़ उत्पादन के लिए 6100 रुपये का खर्च आया तथा धान का कुल उत्पादन 26 कुन्तल प्रति एकड़ प्राप्त हुआ है। और इस प्रकार पांच एकड़ खेत में धान का कुल उत्पादन लगभग 130 क्विंटल हुआ है जिसकी न्यूनतम समर्थन मूल्य पर कुल कीमत 1,74,850 रुपये तथा उत्पादन करने में कुल खर्च लगभग 30,500 रुपये हुआ। धान उत्पादन के द्वारा मुझे 1,44,350 रुपये का शुद्ध लाभ हुआ है। धान उत्पादन में गोबर की खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट का भरपूर उपयोग किया।

मक्का की फसल – मैंने खरीफ में एक एकड़ खेत में मक्का की फसल लगाई थी। एक एकड़ मक्का की खेती करने में कुल लागत लगभग 6000 रुपये आई जिसके द्वारा कुल मक्का का उत्पादन 20 क्विंटल हुआ जिसकी बाजार मूल्य पर कुल कीमत लगभग 20,000 रुपये हुई तथा इसके द्वारा मुझे शुद्ध बचत के रूप में 14000 रुपये की प्राप्ति हुई। मैंने मक्का उत्पादन में लगभग 22 क्विंटल गोबर की सड़ी हुई खाद एवं पांच क्विंटल वर्मी खाद का उपयोग किया है।

गेहूं का उत्पादन भी मैं चार एकड़ खेत में कर रहा हूं। मैं अपनी खेती में रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षा कार्बनिक खादों का अधिक उपयोग करता हूं। मैं अपने गेहूं उत्पादन में प्रति एकड़ लगभग 20 क्विंटल गोबर गैस प्लांट से निकली हुई खाद तथा 5 क्विंटल वर्मी खाद का प्रयोग करता हूं। इस प्रकार एक एकड़ गेहूं की खेती करने में मुझे लगभग 6550 रुपये खर्च करना पड़ा तथा जिसके द्वारा मुझे लगभग 10 क्विंटल प्रति एकड़ का उत्पादन प्राप्त हुआ। जिसका बाजार मूल्य पर कुल मूल्य 17000 रुपये हुआ। गेहूं की खेती से मुझे शुद्ध बचत के रूप में प्रति एकड़ लगभग 10.450 रुपये की बचत हो जाती है। और इस प्रकार चार एकड़ गेहूं की खेती से मुझे लगभग 41.800 रुपये की आय हुई।

गन्ने की भी खेती – मैं अपने यहां 2.5 एकड़ खेत में गन्ने का भी उत्पादन करता हूं। गन्ने की खेती करने के लिए मैंने अपने खेत को अच्छी प्रकार तैयार करके उसमें 25 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद एवं 10 कुन्तल प्रति एकड़ की दर से वर्मी खाद का उपयोग किया। उर्वरक के रूप में मैं एन.पी.के., यूरिया, पोटाश के साथ जिंक का भी उपयोग करता हूं। गन्ना उत्पादन में कुल खर्च लगभग 11900 रुपये प्रति एकड़ आया तथा उत्पादन लगभग 400 कुन्तल प्रति एकड़ हुआ है। मैं अपने गन्ने को चीनी कारखाने में बेचता हूं, जिसके द्वारा मुझे प्रति एकड़ लगभग 1,08,000 रुपये कुल आय होती है। खर्च काटकर गन्ना उत्पादन से मुझे एक एकड़ में शुद्ध आय 96,100 रुपये की होती है। गन्ने में मजदूर की कमी होने के कारण खरपतवार के लिए मैंने एट्राजिन का उपयोग किया था। साथ ही हमारे यहां गन्ने में दीमक की बहुत समस्या आती है जिसके नियंत्रण के लिए मैंने अपने खेत में रिजेण्ट नामक दवा का 5 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से प्रयोग किया।

सरसों की भी खेती – मैंने एक एकड़ खेत में सरसों की भी खेती की। एक एकड़ सरसों की खेती के लिए मुझे लगभग 2900 रुपये खर्च करना पड़ा जिसके द्वारा मुझे एक एकड़ सरसों की खेती से मुझे 6 क्विंटल सरसों प्राप्त हुई जिसका बाजार मूल्य पर कुल मूल्य 16800 रुपये होता है तथा खर्च काटकर सरसों उत्पादन

से मुझे 13900 रुपये की बचत प्राप्त हुई है। मैंने सरसों के अधिक उत्पादन के लिए और माहो के नियंत्रण के लिए साइपरमेथ्रिन का प्रयोग किया, और साथ ही सरसों की फसल में सल्फर का भी प्रयोग करता हूं।

चना का उत्पादन – मैंने अपने यहां एक एकड़ खेत में चने की भी खेती की है जिसके उत्पादन में भी मैं 5 क्विंटल वर्मी खाद का प्रयोग किया। एक एकड़ चना की खेती करने के लिए मेरा लगभग 4000 रुपये का खर्च आया, जिसमें 8 क्विंटल चना उत्पादन प्राप्त हुआ। जिसका बाजार मूल्य पर कुल मूल्य 24000 रुपये होता है तथा खर्च काटकर मुझे 20,000 रुपये की बचत प्राप्त हुई है। मैंने अपने चने की फसल में सुरक्षा के लिए नीम तथा करंज की पत्ती का काढ़ा प्रयोग किया, पर जोखिम के कारण मैं अपने चने के खेत में साइपरमेथ्रिन और प्रोपेनोफास कीटनाशक का प्रयोग करता हूं।

सब्जी वाली मटर का उत्पादन – मैं अपने खेत में 50 डिसमिल अर्केल मटर सब्जी का उत्पादन करता हूं जिसके उत्पादन में मैंने लगभग 3 क्विंटल गोबर की खाद एवं लगभग 4 क्विंटल वर्मी खाद का प्रयोग किया है। साथ ही अधिक उत्पादन के लिए थोड़ी मात्रा में उर्वरक का भी उपयोग किया है। मटर उत्पादन के लिए मैंने लगभग 1300 रुपये खर्च किया तथा उत्पादन लगभग 4 क्विंटल प्राप्त हुआ जिसका बाजार मूल्य पर कुल मूल्य 8000 रुपये होता है, जिसमें से खर्च काटकर मुझे मटर की खेती से लगभग 6700 रुपये की शुद्ध बचत प्राप्त हुई है।

अदरक का उत्पादन – मैं अपने खेत में अदरक की भी खेती करता हूं। जिसके लिए मैं अपने अदरक के खेत में विशेषज्ञों की सलाह पर लगभग 50 कुन्तल सड़ी हुई गोबर की खाद, तथा लगभग 20 कुन्तल वर्मी खाद तथा थोड़ा सुपर फास्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश व आवश्यकतानुसार यूरिया का उपयोग कर अदरक का घनकंद लगाना शुरू किया। मुझे विकासखण्ड के बी.टी.एम. के सहयोग से उन्नत किस्म की अदरक का बीज प्राप्त हुआ। मैंने अपने खेत में एक फुट की दूरी पर नाली बनाई जिसमें लगभग 20 सेंटीमीटर की दूरी पर अदरक के घनकंद को लगाया और लगाने के लगभग 35 से 40 दिन बाद अदरक के पौधों पर मिट्टी चढ़ाना प्रारम्भ किया। समय–समय पर आवश्यकतानुसार मैं खेत में निदाई–गुड़ाई कर घास–पात का नियंत्रण करता था। अदरक में सिंचाई का विशेष महत्व है। अतः मैंने आवश्यकतानुसार खेत में पानी का समुचित प्रबंध किया था। और इस प्रकार से अदरक की खेती के द्वारा मुझे अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ। एक एकड़ खेत में अदरक की काश्त लागत लगभग 23700 रुपये आई, जिसके द्वारा कुल उत्पादन लगभग 58 कुन्तल प्राप्त हुआ। इस उत्पादन के द्वारा मुझे कुल धनराशि 2,90,000 रुपये प्राप्त हुई एवं खर्चे को काटकर अदरक की खेती से मुझे कुल 2,60,300 रुपये की शुद्ध बचत हुई।

टमाटर की खेती – मैंने लगभग 10 डिसमिल में टमाटर की भी खेती की है। अपने यहां टमाटर की खेती स्वयं के तैयार बीज से करता हूं, साथ ही इसके उत्पादन में मैं किसी भी रसायन का प्रयोग नहीं करता हूं। टमाटर का उत्पादन मैं अपने यहां जैविक खादों की सहायता से करता हूं। अपने यहां तैयार वर्मी खाद से मैं टमाटर का उत्पादन करता हूं। मेरे यहां लगभग 5 क्विंटल टमाटर का उत्पादन हुआ है जिसकी कीमत लगभग 10,000 रुपये होती है। जबकि इसके उत्पादन में कोई खर्च नहीं आया।

आलू का उत्पादन – मैंने अपने 10 डिसमिल खेत में आलू की भी खेती की है। जिसके लिए मैंने लगभग 1500 रुपये खर्च किए हैं। जिसके द्वारा मुझे 7 क्विंटल आलू प्राप्त हुआ है। आलू उत्पादन में भी मैंने केवल बीज और उसके उपचार करने के लिए रसायन बाजार से खरीदा है। अन्य पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए मैंने गोबर खाद एवं वर्मी खाद का उपयोग किया है।

गोभी की खेती – मैंने अपने 10 डिसमिल खेत में गोभी का भी उत्पादन किया है। जिस पर उत्पादन लागत के रूप में मुझे 500 रुपये खर्च करना पड़ा, तथा जिसके द्वारा मुझे लगभग 2 क्विंटल गोभी प्राप्त हुई। जिसकी बाजार मूल्य पर कुल कीमत

लगभग 4000 रुपये होती है तथा खर्च काटकर मुझे गोभी से 3500 रुपये की बचत हो जाती है।

इसके अलावा मैं अपने यहां अपने उपयोग के लिए 4–5 पेड़ लौकी, लगभग दो डिसमिल में भिण्डी, इतना ही बरबट्टी, लगभग 10 डिसमिल हल्दी की खेती की है। जिससे मुझे सब्जी बाजार से खरीदनी नहीं पड़ती है। साथ ही कार्बनिक खाद से उत्पादित सब्जी से हमारे परिवार का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। साथ ही मैं अपने यहां कुछ और फसलों का उत्पादन करता हूं जैसे– खीरा, ककड़ी, धनिया, मेथी, अलसी, रामतिल, सूरजमुखी, परवल, सेम, प्याज, लहसुन, मूली, पालक आदि की खेती अपनी आवश्यकतानुसार करता हूं।

गोबर गैस यूनिट – मेरे यहां पशुपालन भी होता है। दूध के साथ हल चलाने के लिए पशुओं का उपयोग होता है, साथ ही इनसे गोबर भी प्राप्त होता है। पहले इस गोबर को सड़ाकर खाद तैयार किया जाता था, परन्तु अच्छी तरह ना सड़ने के कारण मेरे यहां दीमक का बहुत प्रकोप होता था। जिससे हमारी फसल को नुकसान होता था। परन्तु सन् 2008–09 में क्रेडा के सहयोग से हमारे यहां गोबर गैस यूनिट लगा, जिसमें प्रत्येक दिन के गोबर को घोल बनाकर हम इस प्लांट में उपयोग करते हैं। जिसके द्वारा लगभग प्रत्येक तीन माह के अन्तराल से मुझे एक ट्राली अच्छी तैयार खाद प्राप्त हो जाती है। साथ ही मेरे चार व्यक्तियों वाले परिवार के लिए इससे उत्पन्न गैस से खाना नाश्ता भी बन जाता है। इस प्रकार गोबर गैस यूनिट के द्वारा अच्छी प्रकार तैयार खाद भी प्राप्त होता है। साथ ही इसके द्वारा ईंधन भी प्राप्त हो जाता है, जिससे मेरा गैस का खर्च बच जाता है और किसी तरह का इससे प्रदूषण भी नहीं फैलता है।

वर्मी खाद का उत्पादन – अपने उत्पादन की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए मैंने अपने यहां कृषि विभाग के सहयोग से 10 फीट लम्बा, 5 फुट चौड़ा और 2 फीट गहरा तीन वर्मी पिट का निर्माण कराया है जिससे मुझे एक पिट से लगभग 15 क्विंटल वर्मी खाद तीन माह में प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार तीन वर्मी टांके से एक साल में कुल वर्मी खाद का उत्पादन 135 कुन्तल के आसपास हो जाता है। मैं अपने वर्मी टांके को भरने के लिए अपने यहां के कूड़ा–करकट, पुआल, भूसा, पेड़ के पत्तों, गोबर, मिट्टी आदि का उपयोग करता हूं। मेरे यहां वर्मी खाद तीन माह में तैयार हो जाती है और एक साल में मैं लगभग तीन बार टांके को भरता एवं खाली करता हूं जिनका उपयोग मैं अपनी फसल उत्पादन में करता हूं और इस प्रकार इस खाद के उपयोग से जहां एक ओर मेरी उत्पादन लागत कम होती है, वहीं दूसरी ओर भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास नहीं होता एवं उत्पाद की गुणवत्ता भी अच्छी रहती है।

सुनील भाई अपनी सफलता की कहानी बताते हुए कहते हैं कि अब मुझे अपनी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह पूरा करने में कोई कठिनाई नहीं आती है। क्योंकि अब मैं खेती की नई तकनीक के द्वारा अपनी उत्पादकता की लागत कम करते हुए बढ़ाकर लाभ अधिक प्राप्त कर रहा हूं। अपनी खेती के साथ अपने यहां चल रहे अन्य कार्यक्रमों को दिखाते हुए सुनील जी कृषि विभाग, आत्मा योजना के साथ अन्य उन सभी विभागों को तथा उसमें कार्यरत कर्मचारियों को बहुत धन्यवाद देते हैं, जिनके उचित मार्गदर्शन एवं सहयोग से उनकी आय बढ़ी। बढ़ी हुए आय को पाकर वह बहुत उत्साहित हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)
ई–मेलः ajaykumarsingho@gmail.com

हमारे आगामी अंक

जुलाई, 2014	– ग्रामीण क्षेत्र में नई खोज एवं तकनीक (Innovation & technology in the Rural Sector)
अगस्त, 2014	– गांवों से पलायन का बदलता परिदृश्य (Rural Migration)
सितंबर, 2014	– कृषि वित्त प्रबंधन (Agricultural Financing)
अक्टूबर, 2014	– गांवों में रोजगार (विशेषांक) (Rural Employment (Special Issue)
नवंबर, 2014	– कृषि का व्यवसायीकरण (Commercialisation of Agriculture)
दिसंबर, 2014	– ग्रामीण–शहरी लिंकेज (Rural-Urban Linkages)

शिल्पियों की भूमि रघुराजपुर

रघुराजपुर, कला प्रेमियों का स्वप्न स्थान। पूरा गांव जैसे कला और दस्तकारी का खुला संग्रहालय हो। इस गांव में 100 से अधिक परिवार रहते हैं और उनमें ज्यादातर परिवार किसी न किसी प्रकार की दस्तकारी से जुड़े हैं। यहां के शिल्पी कपड़े, कागज और ताड़ के पत्तों पर अपने कुशल हाथों से जादू कर देते हैं। यह छोटा–सा गांव ओडिशा के पुरी जिले में स्थित है। इस गांव के चारों तरफ ताड़, आम, नारियल और गर्म जलवायु के अन्य पेड़ों के साथ–साथ पान के पत्तों का बाग भी है। लेकिन रघुराजपुर की अपनी पहचान है और वह ओडिशा की कला और शिल्प की समृद्ध परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है।

रघुराजपुर पट्टचित्र के लिए प्रसिद्ध है। उड़िया भाषा में "पट्ट" का मतलब कैनवास और "चित्र" का मतलब तस्वीर है। इसे हाथ से बनी "पट्टी" पर बनाया जाता है, जो कपड़ों की कई परतों को एक–दूसरे से चिपकाकर तैयार की जाती है। चित्रकारी के लिए कलाकार हाथ से बनाए हुए प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल करते हैं। ओडिशा में पट्टचित्र की बड़ी पुरानी परंपरा है। पट्टचित्र का विषय बहुधा पौराणिक और धार्मिक कहानियां होती हैं। कलाकार इन कहानियों को इस प्रकार तस्वीर में उतारता है कि उसे देखकर पूरी कहानी समझी जा सकती है। पट्टचित्रों में मूलरूप से भगवान श्री जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के चित्र होते हैं। रघुराजपुर का हर घर एक नई कहानी कहता है। घरों की दीवारों पर चित्र बने होते हैं। अन्य शिल्पों में प्रस्तर कला, कागज से बने खिलौने, टसरचित्र, काष्ठकला, ताड़ के पत्तों पर चित्रकारी भी शामिल हैं। इन्हें कलाकार तैयार करते हैं और यही गांववालों की आजीविका का मुख्य साधन है। रघुराजपुर का हर परिवार किसी न किसी प्रकार की दस्तकारी से जुड़ा है। यहां तक कि सात–आठ साल की छोटी आयु के बच्चे भी पट्टचित्रकारी करते हैं। शिल्पी अपना उत्पाद विभिन्न गैर–सरकारी संगठनों के जरिए बाजार में बेचते हैं। कई गैर–सरकारी संगठन दस्तकारी उत्पादों के प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और विपणन के काम में गांव की सहायता करते हैं। इस गांव के कलाकार ओडिशा और दूसरे राज्यों में आयोजित विभिन्न मेलों और प्रदर्शनियों में हिस्सा लेते हैं।

रघुराजपुर गोतीपुआ नामक नृत्य के लिए भी जाना जाता है, जो ओडिशी नृत्य का आरंभिक स्वरूप है। प्रसिद्ध ओडिशी नृत्य के गुरु स्वर्गीय पद्मविभूषण गुरु केलुचरण महापात्रा इसी गांव में पैदा हुए थे। गोतीपुआ नृत्य में किशोर आयु के लड़के लड़कियों के लिबास में नृत्य करते हैं। इस गांव के नृत्य कलाकार अब राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं।

रघुराजपुर में सालभर विदेशी मेहमानों सहित लोगों का आना लगा रहता है। पर्यटक अमेरिका, इंग्लैंड, चीन, नेपाल, जापान, इटली जैसे देशों से आते हैं। भारत के पर्यटकों का भी गांव में आगमन होता रहता है। यहां आकर पर्यटकों को ओडिशा की समृद्ध कला और दस्तकारी का परिचय मिलता है। अपनी कला के बल पर ये कलाकार आत्मनिर्भर हैं और उन्हें रोजगार की तलाश में अपने घर को छोड़ने की जरूरत नहीं होती। यह गांव एक आदर्श पर्यटन स्थल के रूप में उभरा है। भारत में शायद ही कहीं किसी और गांव में कला के इतने रूप एक साथ देखने को मिलते हो।

(पसूका से साभार)

आर. एन. आई./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2012–14
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–54/2012–14
2 जून 2014 को प्रकाशित एवं 5–6 जून 2014 को डाक द्वारा जारी

R.N.I./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2012-14
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-54/2012-14
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : ईरा जोशी अपर महानिदेशक (प्रमुख), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110020 : वरिष्ठ संपादक : कैलाश चन्द मीना